धरती की बेटी

लेखक

श्री हंसराज 'रहबर'

प्रकाशक

इण्डिया पब्लिशर्स

इलाहाबाद

प्रकाशक—
इण्डिया पब्लिशर्स,
२३३, मोहतशिमगंज,
हिवेटरोड, इलाहाबाद

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक—

रियासती राजाओं के नाम उस अपार आदर
और श्रद्धा के साथ जो इस उपन्यास
की प्रेरणा का कारण
बनी है

दो शब्द

रियासत की जेल से रिहा हुये छः मास का समय भी बीतने न पाया था कि मुझे फिर अंग्रेजी इलाका में गिरफ्तार कर लिया गया। यद्यपि इस बार पहिले से कुछ कम यातनाओं का सामना करना पड़ा, फिर भी जेल, जेल है, सीमित शुष्क चार दीवारी में बन्द रहना, तंग कोठरियों में एकान्त की रातें व्यतीत करना और नित्य प्रति कैदी साथियों की विवशता की गाथायें सुनना जड़ता और उदासीनता मन को घेरे रहती है। समय की गति रुक जाती है। अङ्गों में तनाव का अनुभव होने लगता है मानो जिन्दगी भरभरा कर टूट जायेगी।

ऐसे समय अगर बाहर की दुनियाँ से भीतरी नहीं तो कम से कम बाह्य सम्बंध ही जोड़ लिया जाय तो मन के आश्वासन का एक साधन निकल आता है। कल्पना के संसार में साधारण घटनायें भी प्रलयकारी सी प्रतीत होने लगती हैं।

इन परिस्थितियों में मियाँवाली जेल की एक कोठरी में बन्द रह कर यह कहानी लिखी गई। प्राचीन काल की कहानियों की तरह यह कहानी भी एक राजा और एक रानी से सम्बन्धित है। लेकिन जिस तरह हमारी दुनिया पहली दुनिया से सर्वथा भिन्न है उसी तरह यह कहानी भी पहली कहानियों से भिन्न है।

अब जब कि यह कहानी लिखी जा चुकी है मैं सोचता हूँ कि अगर मेरा जन्म रियासत में न होता अगर मैं जेल न जाता तो साथी और सहयोगी और हमारी जनता इस रक्त कथा से वंचित रह जाती।

रियासतों में शीघ्र ही उभर कर भभकने वाली यह भस्मावृत्त चिनगारी आपके हाथों में है।

ऋषि नगर, लाहौर
जनवरी १९४७

हंसराज 'रहबर'

निवेदन

'धरती की बेटी' उपन्यास के लेखक हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री हंसराज 'रहबर' हैं। रहबर' ने अपने अनुभवों को कल्पना के सुनहले आवरण में ढँक कर जो कथानक तैयार किया है वह चित्ताकर्षक, लोमहर्षक, कारुणिक और उत्प्रेरक है।

कथानक की जमीन एक देशी रियासत है जहाँ आज भी सामन्तवादी वर्बरता अपने वीभत्सतम रूप में नंगा नाच कर रही है। संसार बदल गया है, बदलता जा रहा है। ब्रिटिश भारत में स्वतंत्रता और समता संस्थापन को ओर बढ़ने वाली शक्तियाँ विदेशी सत्ता और देशी शोषण के विरुद्ध सबल संघर्ष करती बढ़ती चली जा रही है।

आग की ये लपटें देशी रियासतों के दामन को भी झुलसाने लगी हैं। काश्मीर हैदराबाद त्रावनकोर फरीदकोट आमलनेर दतिया आदि कोड़ियों रियासतों की जनता सामन्तवादी युग के अवशिष्ट कोढ़ राजे रजवाड़ों की पाशविकता और अनाचार के विरुद्ध उभरने लगी हैं। वह ब्रिटिश हिन्दुस्तान के स्वजनों की रक्ताभ परम्परा को बनाये रखना चाहती है।

सर्वतोमुखी जागरण की नवल वेला में हिन्दुस्तान का यह चतुर्थांश भी आखिर पीछे क्यों रहे ?

गिरती ढहती सामन्तवादी शासन व्यवस्था और उठती उभरती जनता के द्वन्द्व और संघर्षों की यह रक्त कहानी 'रहबर' का यश ही नहीं बढ़ाती बल्कि पाठक की आँखों के सामने वह चित्र भी खींच देती है जिसकी लाल डोरियाँ सुस्पष्ट और प्रौढ़ हैं।

हमें यह उपन्यास आपके हाथों में देते हुये हर्ष हो रहा है।

—संपादक

अन्य प्रकाशन

१. स्वतंत्रता संग्राम के ९० वर्ष — मूल्य ४॥)
ले० श्रीकृष्णदास
(१८५७ से १९४६ तक का राजनैतिक इतिहास—सजिल्द और सचित्र, पृष्ठ संख्या ३२५—इस पुस्तक में भारतीय जनता के रक्त-स्वेद-अश्रु की क्रम-बद्ध कहानी है, रोचक और रोमांचकारी !)

२. कम्यूनिज्म धर्म और आचार — मू० ।।=)
ले० टी० ए० जैक्सन—अनुवादक श्री० डी० पी० खरे

३. द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद — मू० ।।=)
ले० स्तालिन, अनुवादक श्रीकृष्णदास

४. धर्म पर लेनिन के विचार
अनुवादक श्रीकृष्णदास — मू० १।)

५. साम्प्रदायिक विद्वेष पर बापू के विचार — मू० २)
(महात्मा गाँधी के विचारों का संकलन, और नोवाखाली के ऐतिहासिक यात्रा का विवरण)

पिंजड़ा

[१]

ढेलों और ताज़ा कटे खेतों की तीखी जड़ों में तेज़ तेज़ चलने वाली तारो के क़दम महल के फ़र्श पर उखड़े उखड़े पड़ रहे थे। यह क़ालीन, यह ग़लीचे, यह फ़ानूस और राजसी ठाठ बाठ की सैकड़ों चीज़ें उसने पहले कभी नहीं देखी थीं। और, अब देखती थी तो ऐसा अनुभव होता था कि किसी ने उसे किसान के घर से उठा कर जादू की दुनियाँ में उतार दिया है। उसने जूती एक तरफ़ उतार दी और नंगे पाँव चलने लगी। डरते-डरते दायाँ और फिर बायाँ क़दम आगे बढ़ाया। मुलायम-मुलायम, किस क़दर मुलायम था यह फ़र्श ! काश. उसे एक काँटा ही चुभ जाता ! वह चकित हो कर इधर उधर देखने लगी। कानसों पर झिलमिल झिलमिल करते फूलदार कपड़े लटक रहे थे और उन पर शीशे, कंघियाँ. सुरमेदानियाँ, पाउडर, क्रीम, बिंदी की शीशियाँ और न जाने क्या क्या पड़ा था। दीवारों पर कितने ही आकर्षक दृश्य दिखाई दे रहे थे। और, छत तक बेल

बूटों से छपी हुई थी। फिर यह फ़ानूस और यह सोफ़े। उसे मालूम नहीं था कि कौन सी चीज़ देखे और कौनसी न देखे। कहाँ खड़ी हो और किस जगह बैठे। उसने इधर उधर नज़र दौड़ाई। कमरे में दूसरा कोई नहीं था जिससे वह पूछ लेती कि यह सब चीजें यहां क्यों हैं ? किस लिए हैं ? और, वह कौन सी चीज़ कब इस्तेमाल कर सकती है ?

उसे ख़्याल आया कि मुझे इस महल में रानी बन कर रहना है। उसकी आत्मा खिल उठी और शरीर का अंग अंग मधुरता से भर गया। एक शब्द, केवल एक शब्द से उसकी दुनियाँ सहसा आलोकित हो उठी, नाच उठी। जब उसे रानी बन कर ही रहना है तो फिर डर कैसा ! उसका मन उत्साहित हुआ और वह एक—दो—तीन क़दम एकदम आगे बढ़ गई। मुलायम मुलायम, किस क़दर मुलायम था यह फ़र्श ! उसने उसे हाथ से छू कर देखा। नर्म क़ालीन का स्पर्श उसे अपनी आत्मा में बैठता हुआ मालूम हुआ। वह दोनों हाथ जल्दी जल्दी उस पर फेरने लगी। न जाने उस पर कौन सी ऐसी चीज़ बिखरी पड़ी थी जिसे एकत्रित करके वह अपने भीतर भर लेना चाहती थी। वह एकदम लेट गई और अपना गाल क़ालीन से रगड़ने लगी। फिर वह उठ बैठी और खिलखिला कर हँस पड़ी। यह आश्चर्य की पराकाष्ठा थी जो पागलपन तो नहीं लेकिन पागलपन की सीमा को अवश्य छू लेती है। इस आश्चर्य में खोई हुई वह एक सोफे पर जब बैठी तो ऊपर नीचे, ऊपर नीचे—झूला सा झूलने लगी। वह उठ खड़ी

हुई। सोफ़े को हाँथ से दबाया। वह नीचे ही नीचे धँसता जा रहा था। वह मुस्कराई और फिर धम से बैठ कर झूला झूलने लगी। उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। यह महल है या जादू का घर! काश उसकी सखियाँ राजो, रत्नी, शीला और भागां...........यहाँ होतीं और वह उनके साथ मिल कर इस फ़र्श पर खेलती, नाचती, गाती और उन्हें दिखाती! कहती, यह सब चीजें मुझे मिली हैं। मैं अब रानी हूँ। यह महल मेरा है। यह सब चीज़ें मेरी हैं। अगर मैं न होती तो क्या यह सब कुछ तुम्हें सपने में भी देखना नसीब होता। भगवान जिसे रूप देता है उसका भाग्य भी बड़ा ही बनाता है।

वह सोफ़े पर बैठी इन विचारों में मग्न इधर उधर हिल रही थी। प्रसन्नता उसके मन से उमड़ी पड़ती थी और आँखों के रास्ते छन छन कर कमरे में फैल रही थी। यह प्रसन्नता उस व्यक्ति की प्रसन्नता के समान थी जो अकस्मात पहाड़ की एक बुलन्द चोटी पर जा पहुँचा हो, वहाँ से नदियों, सोतों और खेतों के मनोहर दृश्य देख कर प्रसन्न होता हो और उसे अपने साथी नीचे ज़मीन पर महत्वहीन धब्बों की तरह चलते फिरते नज़र आते हों। उस समय वह अपने भाग्य पर गर्वित हो उठता है और उस बुलन्दी पर फूला नहीं समाता। यह विचार उसके पास तक नहीं फटकता कि थोड़ी देर में भूख लगेगी तो वह क्या खाएगा। रम्य दृश्यों से आनन्द ग्रहण करने वाली भावनायें और हैं, तथा भूख से व्याकुल करने वाली और भूख

लगने पर यह सारी रम्यता फीकी पड़ जाती है। उन साथियों से जिन्हें वह महत्वहीन धब्बे समझता है वह बातें करने को तरसेगा। लेकिन वह उनसे मिल नहीं सकेगा। फिर तारो तो रानी थी। रानी के लिये यह बातें सोचना उचित नहीं था।

उसका जन्म एक ऐसे गाँव में हुआ था जहाँ एक पटवारी की पत्नी को महारानी से कम न समझा जाता था। वहाँ की किसी लड़की के रानी बन जाने की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। उसके माता पिता ने उसका नाम तारो भले ही रखा था पर वह भी क्या जानते थे कि यह नन्हा सा तारा जवानी के क्षितिज पर पहुँचते ही चाँद के सदृश चमक उठेगा और एक राजा के राजभवन की शोभा बनेगा।

वह एक कानस के क़रीब आई। शीशे में अपनी शकल देखी, मोटे मोटे नेत्रों में जादू भरी पुतलियों को घुमाया और मुस्करा दी। इस मुस्कराहट में यौवन की अंगड़ाई थी और जवानी का मद था उसने शीशी खोली। माथे में बिंदील गाई। मांग में रंग भरा। होठों को लाल किया। पतले होठ तनिक मोटे हो गए। फिर उसने दूसरी शीशी खोली, क्रीम को उंगली से छुआ। सूँघा, सूँघा फिर सूँघा। कितनी अच्छी थी यह सुगन्ध। वह उँगलियाँ भर कर गालों पर लगाने लगी। यौवन की लालिमा पर सफ़ेदी छा गई। उसने डिब्बा खोलकर ऊपर से पाउडर भी लगा लिया। शायद वह इन्हें कभी न लगाती। लेकिन विदा होते समय शहर से आई उसकी एक भाभी ने कहा था—"वहाँ क्रीम होगी,

पाउडर होंगे, जितना लगाओगी उतना चमकोगी।" लेकिन अब लगाकर शकल देखी तो नाक चढ़ा ली। कितनी बुरी लगती थी यह सफ़ेदी और लाली। कानस पर जो फूलदार कपड़ा लटक रहा था उसे लेकर सब कुछ एक दम पोंछ डाला।

"सरकार!" किसी ने कहा।

तारो ने मुड़ कर देखा तो एक बुढ़िया हाथ बाँधे खड़ी थी!

"क्या बात है?"

"आपकी दासी हूँ सरकार?"

"तुम दासी हो?"

"जी हाँ"

"और मैं?"

"आप सरकार।"

"दासी और सरकार" तारो ने दुहराया। उसकी आत्मा से संगीत फूट निकला। एक बार फिर रानी के शब्द से उसकी दुनियाँ नाच उठी। उसके मन की समस्त चंचलता आँखों में उभर आई और वह बोली "क्या काम करोगी?"

"जो आप हुक्म देंगी।"

"मेरा हुक्म," उसने सोचा और फिर कहा, "मेरा हुक्म मानोगी?"

"जी सरकार।"

"हूँ" तारो ने सिर हिलाया और अपनी आँखें बुढ़िया के चेहरे पर डालकर कहा, "मैं कहूँगी। जाओ दासी, लाओ

चिड़िया का दूध। ला दोगी ?"

इस पर बूढ़ी दासी मुस्कराई और उसने कहा, "चिड़िया का दूध होता कहाँ है सरकार ?"

"न हो" तारो ने ज़रा रोब से कहा—"तुम्हें मेरा हुक्म मानना है। कहो ला दूँगी।"

"अच्छा, अच्छा सरकार ला दूँगी।"

तारो ने मुँह दूसरी ओर घुमाकर होठों पर हाथ रख लिया।

बूढ़ी दासी ने एक नजर अपनी नई रानी पर डाली। उसकी उम्र, रूप, जवानी, और स्वभाव का अन्दाज़ लगाया। तारो के चेहरे पर पाउडर और क्रीम के धब्बे दीख पड़ते थे। देहाती लड़की की इस सरलता पर उसे हँसी आई। जंगल की आज़ाद चिड़िया पिंजरे की सजावट और सोने की प्यालियों को देख कर ख़ुश हो रही है। लेकिन इस ख़ुशी के पीछे जो भयानक वेदना छिपी है उससे वह एकदम बेख़बर है। दासी का मन उसके प्रति दया और सहानुभूति से भर आया और उसका चेहरा उदास पड़ गया।

[२]

दो दिन पहले तारो एक ग़रीब किसान की लड़की थी जिसका काम गोबर उठाना, चरख़ा कातना खाना पकाना अथवा साग तोड़ने और बेर चुनने चले जाना था। हाँ, जिस

समय वह अपनी सहेलियों के संग खुले वातावरण में फूली हुई सरसों के खेतों में घूमा करती थी तो उसे उन रोमाञ्चकारी क्षणों का अनुभव भी हो जाता था जो यौवन-आलोड़ित दिलों में उथल पुथल मचा देते हैं। सहेलियों में जो नई व्याही होती थीं उन्हें सुसराल, पति की मीठी मीठी प्यार और मुहब्बत की बातें सुनाने पर मजबूर किया जाता था। वह उसके अनुभवों से मुग्ध होने के अतिरिक्त अपने आगामी जीवन के मधुर स्वप्न भी देखती थी। फिर एक दूसरी के रंग रूप की चर्चा और आपस में छेड़ छाड़ शुरू होती। कौन लड़का किसकी ओर घूर घूर कर देखता है। और, कौन किसकी राधा बनना चाहती है, ऐसी और इस प्रकार की कितनी ही बातें थीं जो मुस्कराहट भरी मूक दृष्टि में अनकही रह जाती थीं। इस दिल्लगी के बाद हर एक लड़की का बाकी दिन और नींद न आने तक के व्याकुल क्षण उस लड़के की याद में बीता करते जो उसकी ओर अधिक से अधिक आकर्षक दृष्टि से देखा करता था। उस समय तारो के मस्तिष्क में सबसे स्पष्ट चित्र श्रवण का होता। श्रवण लम्बे क़द का सुन्दर और बलिष्ट नौजवान था। उसकी चौड़ी छाती और खुला हुआ रोबदार चेहरा किसी भी लड़की के लिए आकर्षण का कारण बन सकता था। तारो ने अनेक बार देखा था कि एक श्रवण क्या, तीज त्योहार और किसी के घर व्याह शादी के मौक़े पर गाँव के सब लड़कों की सौन्दर्य-लोभी दृष्टि उसी पर केन्द्रित होती थी। मगर जो आकर्षण, जो लालसा और,

मर मिटने की जो कामना श्रवण की निगाह में होती वह प्रेम, वह तड़प और वह आनन्द किसी और आँख में न थी। तारो के कल्पना-आकाश में श्रवण एक ओजस्वी नक्षत्र था। इससे पहले उस आसमान पर एक तारा और भी जगमगाया था। उस तारे की चमक और प्रतिभा निस्सन्देह अधिक थी। लेकिन वह उदय होते ही—दूर, कहीं दूर चला गया था। तारो के मस्तिष्क में उसका प्रतिविम्ब ही अब अंकित था जो मध्यम पड़ते पड़ते लोप सा हो गया था। अब केवल श्रवण ही चमक रहा था, क्योंकि देहाती लोग कल्पनाप्रिय कम और यथार्थप्रिय अधिक होते हैं।

तारो संतुष्ट थी कि यह नक्षत्र उससे कभी अलग न होगा। लेकिन उसे यह क्या मालूम था कि यह नक्षत्र कहीं और अलग नहीं जायेगा? उसे क्या पता था कि कौन सा क्षण जीवन की दिशा को किस ओर बदल देगा?

एक दिन तारो खेत से लौट रही थी। वह अपने बाप को रोटी देने वहाँ गई थी। छाछ का खाली बरतन, कुछ धीमा और तरकारियाँ जो वह खेत से तोड़ लाई थी उसके पास थीं। बादल बरस कर खुला था।

भीगी हुई हवा में झूमते हुए पेड़ और धुले हुए बेल बूटे, कितना सुन्दर दृश्य था! वह मन्द स्वरों में गुनगुना उठी:

"मेरा यार सरु दा बूटा, वेड़े विच ला रखदी।"*

*मेरा प्रेम सरु का बूटा है। मैं उसे (मन के) आँगन में लगा रखती हूँ।

इस गीत की तरह किसी अछूते विचार में मग्न वह आत्म-विमुग्ध चली आ रही थी। इस विचार धारा और आत्म विमुग्धता ने उसके सौन्दर्य को और भी चमका दिया था। वह भरे भरे गाल, बदराई मस्त आँखें और मुस्कराते हुए बेल के नवजात पत्तों के सदृश लाल ओंठ, कौन मर्द उसे इस हालत में देख कर उस पर लट्टू हो जाता? किसके मन में उसे प्राप्त करने को इच्छा न होती?

उसका बाप एक देसी रियासत का रहने वाला था जिसका राजा उस वक्त धर्मपाल सिंह था। हाँ, उसका नाम धर्मपाल सिंह था क्योंकि उसके बाप का नाम पृथ्वीपाल सिंह था, दादा का नाम वीरपाल सिंह और परदादा का नाम प्रणपाल सिंह था। वरना न कभी उसके परदादा ने प्रण का पालन किया और न उसने धर्म का। नाम में यथार्थ ढूंढना फिज़ूल है। इस दुनियाँ के अकसर नाम उल्टे होते हैं। क्या कोई भिकमंगे को दौलतराम, अनपढ़ और मूर्ख को विद्यासागर और जन्म के अन्धे को त्रिलोचन नाथ कहने को मना करता है? नाम रखने से मना कौन कर सकता है' नामों पर किसी की इजारेदारी थोड़े ही है। उसके रास्ते में तो इजारेदारी भी रुकावट नहीं बन सकती थी क्योंकि वह रियासत का राजा था और उसका नाम धर्मपाल सिंह था। अगर यथार्थता के उद्देश्य से ही नाम रखा जाता तो उसका नाम बटेरमार सिंह अथवा चिड़ीमार सिंह रखा जाता। वह हिरनों और बटेरों का शिकार मारने बाहर निकला करता था। वैसे तो शिकार में

कुत्तों के अलावा दरबारियों और नौकरों चाकरों का काफ़ी अमला उसके साथ रहता लेकिन बहुधा वह अकेले ही शिकार खेलना पसन्द करता। क्योंकि दूसरों के साथ रहते हुए व्यक्तिगत वीरता दिखाने का मौका बहुत कम मिलता। फिर शेर चीते का मुक़ाबला तो था नहीं। हिरनों और बटेरों के शिकार में भी दूसरों की सहायता लेना वह शान के विरुद्ध समझता था। इस लिए सब लोगों को पीछे रहने का हुक्म देकर वह मील डेढ़ मील अपने चहेते शिकारी कुत्ते के साथ निर्भय घूमा करता।

आज भी वह अकेला था। वह शिकारी कुत्ता जिसे उसने विलायत में दो हज़ार रुपये खर्च करके खरीदा था उसके साथ था। यह कुत्ता एक हिरनी का पीछा करता हुआ उधर ही आ निकला जिधर से तारो गुज़र रही थी और ठीक उसके निकट आ कर उसने हिरनी को पछाड़ लिया। इस डरावने कुत्ते को देख कर तारो के मुँह से हल्की सी चीख़ निकली और वह डर के मारे क़दम आगे न उठा सकी। लेकिन जब नजर ऊपर उठाई तो देखा सामने राजा खड़ा था। वह और भी सहम गई। उसने राजा को पहले कभी नहीं देखा था। मगर सुन ज़रूर रखा था कि राजा कुत्तों को साथ लेकर शिकार खेलने निकलता है। वह रीछ सा भयंकर कुत्ता और यह रोबदार चेहरा और क़ीमती पोशाक। वह समझ गई कि यह राजा धर्मपाल सिंह है। रोब, भय और आश्चर्य के मिले जुले भाव उसके मन में उठ रहे थे। उसके चेहरे का रंग क्षण प्रति क्षण बदल रहा था जिससे उसके

सौंदर्य में एक निराला आकर्षण उत्पन्न हो रहा था। राजा धर्म पाल सिंह कुछ ऐसी पैनी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था कि तारो के शरीर में काँटे से चुभने लगे। राजा का कुत्ता भी शिकार को छोड़-कर उधर ही देखने लगा। कह नहीं सकते कि उसने मालिक की निगाहों का अनुसरण किया था अथवा वह भी उसके सौंदर्य से प्रभावित हुआ था। क्या सौन्दर्य पशुओं को प्रभावित नहीं करता? करता हो अथवा नहीं लेकिन वह दोनों निर्निमेष उसकी ओर देख रहे थे। जैसे सोच रहे हों कि यह परियों की रानी इस जंगल में कहाँ निकल आई? धीरे धीरे तारो ने अपने आप को सँभाला और वह विनय से सिर झुका कर अपनी राह चल दी! राजा और कुत्ता वहीं खड़े रह गये।

राजा की कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रह सकती थी। न क़ानून उसका हाथ पकड़ता है न समाज। और न मजहब ही राह में रुकावट बनता है। दरबारी और सामाजिक सब प्रकार की पाबंदिया निर्बलों के लिये होती हैं। राजा अपनी रियासत में शासक है। वह वहाँ मनमानी कर सकता है। जो चीज चाहे ले सकता है। और, अगर रियासत के बाहर भी कोई वस्तु उसे पसन्द आ जाय तो उसे खरीद सकता है। राजा का शरीर इच्छाओं की पूर्ति के लिये ही होता है।

धर्मपाल सिंह भी राजा था। इस देहाती रमणी के अलौकिक सौंदर्य ने उसके मन में एक नई वासना को उजागर

किया था। अगर वह चाहता तो उसी समय हुक्म देकर तारो को मंगवा सकता था। मगर सुन्दरता अपनी रक्षा आप करती है क्रूर से क्रूर आदमी भी उस पर आक्रमण करने से पहिले सोचता है, झिझकता है। राजा भी जानता था कि वह जब चाहे उसे पा सकता था। फिर क्यों न कुछ दिन और खुली हवा में इठलाने दे। जब बिल्ली देखती है कि चुहिया उसकी पहुँच से परे नहीं जा सकती तो वह एक दम उस पर झपटने और उसे अपनी भूख का कौर बना लेने के बजाय उससे खेलना पसन्द करती है। वैसे तो बीसियों नहीं सैकड़ों औरतें राजा के महल में भरी पड़ी थीं जिनमें बड़े २ सरदारों की लड़कियों के अतिरिक्त नौकरों, अफ़सरों और चपरासियों की लड़कियाँ ही नहीं बल्कि बीबियाँ तक शामिल थीं, क्योंकि राजा की नजर में हर एक औरत औरत थी। जिसका रूप उसे लुभा लेता था वह उसे अपने महल की शोभा बना लेता था।

राजा के महल में जितनी रानियाँ थीं उनमें से अगर कोई तारो से अधिक सुंदर न थी तो दो चार उनसे किसी तरह कम भी न थीं। हाँ, इतनी बात ज़रूर थी कि उनकी उमर अब ढल चुकी थी राजा ने उन्हें ज़ोर जबरदस्ती से महल में नहीं डाला था बल्कि वह इन्हें धूमधाम से ब्याह कर लाया था। इस बार तारो को भी उसने ब्याह कर लाने का फैसला किया क्योंकि इस तरह पचास साल की उमर में दूल्हा बनने का शौक़ एक बार फिर पूरा हो जायगा और समाज का समर्थन भी मिल जायगा।

जिस गाँव में तारो का बाप रहता था उसका नाम सराचों था। छः सात फ़र्लांग के फ़ासले पर एक नहर बहती थी, जहाँ गाँव के लोग अक्सर नहाने आते थे। इस नहर से उनके खेत सिंचते और पशु पानी पीते थे। अब इस नहर के किनारे एक इमारत बनने लगी जिसकी बुनियादें बड़े पैमाने पर रखी गईं थीं। ग़ुसलख़ाने, बावरचीख़ाने, डाइनिंग रूम, ड्राइंग रूम, सोने के कमरे और फिर बड़े २ पलंग और रङ्ग बिरंगी तसवीरें और सजावट के लाखों साज़ो सामान जिन्हें देहातियों ने कभी देखा तो क्या सुना तक भी नहीं था। दुनियाँ में उनका काम ज़मीन जोतना, अनाज उगाना और लगान अदा करना है, उन्हें दुनियाँ की कला और सौन्दर्य से क्या मतलब ? न यह मकान बनता और न यह नया आकर्षण उनकी ज़िन्दगी में आता उनके बच्चे टोलियाँ बाँध कर इस विशाल भवन और सजावट का सामान देखने आते और सोचते कि जहाँ से यह सब चीज़ें आती हैं वह कौन सा देश है। जमादार कभी उन्हें दुतकार देता और कभी ईंटे उठवाने का काम मुफ़्त लेता अथवा घंटों काम करवाने के बाद दो दो पैसे हाथ पर रख देता। ख़ैर, जहाँ देहाती जीवन में दिलचस्पी का पर्याप्त सामान हुआ वहाँ उनके लिये कमाई का साधन भी जुट गया क्योंकि उन्होंने मेहनत मज़दूरी करके हज़ारों रुपए कमाए। हालाँकि काफ़ी काम बेगार में भी करना पड़ा। आख़िर मकान तैयार हो गया। उसके साथ ही बाग़ भी लगा और घास के खुले मैदान भी बने। यह राजा

की कोठी थी।

पहले लोगों का ख्याल था कि राजा इस जंगल में शिकार खेला करेगा। शाही तबीयत का क्या ठिकाना, यहीं रहने के लिये कोठी भी बना ली। लेकिन ज्यों ज्यों मकान की बुनियादें ऊपर उठती गईं राजा की हसरत भी बुलंद होती गई। आख़िर भेद खुल गया कि तारो की बदौलत यह कोठी बनी है। लोगों में कानाफूसी होने लगी। किसी किसी ने दबी ज़बान में राजा के रवैय्या की निंदा की। लेकिन आम लोगों ने तारो और तारो के बाप के भाग्य को सराहा। कई दूरदर्शी व्यक्तियों ने तो यहाँ तक सोच डाला कि इस बहाने राज दरबार में पहुँचने का सिलसिला बनेगा। नौजवानों को ओहदे मिलेंगे, गांव का यश बढ़ेगा।

तारो के घर राजा के अहलकारों की आमद रफ्त शुरू हुई। कुछ दिनों में वह घर कच्चे से पक्का बन गया। उस घर का मालिक किसान से सरदार कहलाया और राजा धर्मपाल सिंह, जो नित नए शिकार खेलता था, तारो को धूमधाम से ब्याह कर ले गया।

[३]

छः महीने बीत गये। तारो को अब मालूम हुआ कि उसने रानी बनकर क्या पाया और क्या खोया है। उसे महल में रहते इतने दिन बीत गए मगर राजा की शकल तक देखना नसीब न हुई। पहले पन्द्रह बीस दिन तो खूब बनाव सिंगार करती

रही। वह बाल संवारती, मांग निकालती, क्रीम और पाऊडर भी लगाती और काली आँखों में काजल डालकर घंटों आइने के सामने खड़ी रहती। अपने रंग रूप की प्रशंसा करती और इस प्रशंसा पर वह आप ही प्रसन्न होती। फिर रात को इन्तज़ार करते करते जब तनिक आँख लग जाती तो वह किसी के क़दमों की आहट से चौंक उठती। उसे ऐसा महसूस होता कि उसके सपनों का राजा आया है। लेकिन आँख खुलने पर यह आहट भी सपना ही सिद्ध होती। उस समय हसरत, निराशा और विवशता की तीव्रता से उसका शरीर अकड़ने लगता। जोड़ जोड़ दरद कर उठता। छाती में असह्यवेदना उठती। वह करवट पर करवट बदलती और आँखें बन्द करके सोना चाहती। लेकिन बेचैनी और वेदना किसी समय चैन न लेने देती। इसी विह्वलता में आँखों की चमक और गालों की सुर्खी ऐसे लोप होती जाती जैसे किसी ने उसके शरीर का तमाम ख़ून चूस लिया हो। देखने से ऐसा मालूम होता कि वह सफ़ेद पत्थर की मूर्ति है जिसे कभी किसी अभागे चित्रकार ने दुःख को चित्रित करने के लिए तराशा है।

इस सतत और निष्फल इन्तज़ार ने तारो को सर्वथा थका दिया। यह थकन शरीर की नहीं आत्मा की थकन थी जो जीवन को निस्सार और नीरस बना देती है। ऐसी दशा में आदमी जीने की अपेक्षा मरना चाहता है। मगर मरना इतना सहज तो नहीं। मिटते मिटते भी आस जी से लगी रहती है। तारो अब किसी

की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा उन सखियों को याद किया करती जो अपने अपने सुसराल में सुहाग का सुख भोग रही थीं और जो उसे पति प्रेम की रसीली कहानियाँ सुनाया करती थीं। इन बातों के याद आते ही तारो की आहत भावनाएं और भी कुंठित हो उठती थीं। वह क्या समझती होंगी कि तारो रानी है। काम काज को दासियाँ मिली हैं, सुख और ऐश्वर्य से जीवन बिता रही है। आग लगे इस ऐश्वर्य को। वह आयें और मुझसे यह जीवन बदल लें। महलों में रह कर रानी बनने का सुख देख लें।

वह योंही सोचती तिल तिल कर के घुलती जारही थी। उसका निखरा हुआ रंग इस प्रकार फीका और पीला पड़ता जा रहा था जिस प्रकार काफ़ी प्रकाश न मिलने पर हवा और खाद के पर्याप्त होते हुये भी पौदे का रंग पीला पड़ जाता है। लाल होंठों पर मुस्कराहट का स्थान उदासी ने ले लिया। वही तारो जिसके क़हक़हे पनघट पर गूँजा करते थे और वही तारो जो अपनी चंचलता के कारण अपनी सखियों की जान होती थी अब हर समय अपनी दासी नैना पर कुढ़ा करती थी—उस नैना पर जो उसके लिए चिड़िया का दूध लाने को तैयार थी।

वहा क्या करती ? उसे ख़ुद अपने आप से चिढ़ आती थी। कमरे की हरेक चीज़ काटने दौड़ती थी। उमंगों, वलवलों और अरमानों के हरे भरे खेत पर उस वक्त ओस पड़ गई जब उसे फलने, फूलने और लहराने की ज़रूरत थी। उसकी ज़िन्दगी एक सुहागिन विधवा की ज़िन्दगी थी। अन्तर केवल इतना था कि एक

विधवा के लिए अच्छा खाने और अच्छा पहनने की भी मनाही है मगर समाज उसके खाने पहनने पर एतराज नहीं कर सकता था। वह नए नए ज़ेवर बनवाती। अनेक डिजाइनों की साड़ियाँ मँगवाती और इस प्रकार अपनी भावनाओं को सान्त्वना देती। उसे उन्हें पहनना इतना पसन्द न था जितना बनवाने की चाव थी। अच्छी चीज़ को देखकर खुश होती उसे सराहती और फिर पहन कर आइने में अपने आप को देखती। लेकिन जब कोई ज़ेवर मरज़ी के अनुसार न बना होता अथवा कोई साड़ी उसे पसन्द न आती तो तेवर एक दम बदल जाते। आँखें क्रोध से लाल हो जातीं और नैना पर बरस पड़ती -- "सारी उमर घास चर के गुज़ार दी। ज़रा समझ न आई कि कौन चीज़ कैसी होती है।"

बूढ़ी दासी सुनती और चुप हो जाती। उसने महलों में ही रह कर बाल सफ़ेद किए थे। वह बीसों रानियों की दासी रह चुकी थी। उसने उन्हें भी इसी प्रकार चिड़चिड़ाते और खफ़ा होते देखा था। इसके अतिरिक्त उसने अपनी जवानी के दिन भी देखे थे और जवानी ही में पति प्रेम से वंचित हो गई थी। वह जानती थी कि इस अवस्था में कैसी उमंगें आती हैं और किस चीज़ की तलाश रहती है। इसलिए तारो की बातों पर नाराज़ होने की अपेक्षा उसका मन सहानुभूति से भर जाता था। वह ऊपर से दासी लेकिन भीतर से माँ थी जो अपनी बेटी के दुख को समझती थी और उसकी हर एक हरकत को गवारा करती थी।

एक बार वह साड़ियों का जोड़ा खरीद कर लाई । तारो ने उसे हाथ में लेते ही नाक भौं चढ़ा ली और दूसरे ही क्षण उसे नैना के सामने पटक कर कहा, 'लाख कहा था कि बढ़िया लाना, उठा लाई है यह । मैं क्या करूँ इसको ? जा पहन ले तू ही !"

"बेटी ! मुझ पर क्यों नाराज़ होती हो । जानती हो कि मैं तुम्हारे दुःख को समझती हुई भी तुम्हारी कुछ सहायता नहीं कर सकती । नैना ने शांत भाव से उत्तर दिया ।

तारो ने सुना तो वह उसके मुँह को ओर देखती रह गई । नैना यह शब्द कितने दिनों से अपने मन में दोहरा रही थी मगर उन्हें कहने का साहस आज ही किया था । कहने को तो ये थोड़े और सादा थे । मगर उनमें सहानुभूति और समवेदना छिपी थी और थी उस दुःख और दर्द की कहानी जिसे तारो छः माह से चुप चाप सहन करती आई थी । उसे पहिली बार अनुभव हुआ कि वह जो क्रोध और रोष इतने दिनों से प्रगट करती आई है उसका कारण यह नहीं है कि वह किसी चीज़ को पसन्द करती है या नापसन्द कारण तो कुछ और ही है जिसका इलाज बुड्ढी दासी के पास नहीं ।

उस दिन से नैना के प्रति तारो का व्यवहार एकदम बदल गया । शाहज़ादियों और राजकुमारियों की बदमिजाज़ी तो पहले ही उसका स्वभाव न था । वह तो एक सरल चित्त और शान्त स्वभाव की देहाती लड़की थी । उसकी मनोदशा ने उसे चिड़-चिड़ा और क्रोधी बना दिया था । जो व्यक्ति उसके प्रति प्रेम और

सहानुभूति प्रकट करे वह उस पर नाराज़ नहीं हो सकती। इसलिए वह नैना का आदर और सम्मान करने लगी जैसे वह उसकी दासी नहीं बल्कि मुँह बोली माँ है।

नैना भी सचमुच एक बेटी की तरह उसे प्यार करती। वह हमेशा इस कोशिश में रहती कि तारो को अपनी विवशता का कम से कम अनुभव हो। वह घंटों उसके पास बैठी बातें करती। कभी अपने सम्बन्ध में और कभी दूसरी रानियों के बारे में अथवा कोई किस्सा कहानी सुनाकर समय काटती। वह बराबर उसका दिल बहलाने का सामान जुटाने की चिन्ता में लगी रहती।

एक दिन नैना किसी काम से बाज़ार गई थी। उसने देखा कि कोई आदमी चौक में खड़ा पिंजड़ों में बन्द पक्षी बेच रहा है। उसके पास एक सुन्दर मैना थी। उसे देखते ही नैना के मस्तिष्क में छोटी रानी का विचार आया। उसने सोचा कि अगर मैं इस पंछी को ख़रीद लूँ तो उसे रानी ज़रूर पसन्द करेगी।

उसका ख़याल ठीक निकला। तारो मैना को देख कर इतनी ख़ुश हुई मानो उसे चिरकाल की बिछुड़ी कोई सहेली मिल गई हो। उसने तत्काल एक बढ़िया सा पिंजड़ा ख़रीद लाने का हुक्म दिया जो अगलेदिन ही आगया। चाँदी की दो प्यालियाँ बनवाई गई जिनमें मैना के लिए चोगा और पानी रखा जाता था। इस बेज़बान सहेली को पाकर उसके जीवन में

एक प्रकार की मधुरता उत्पन्न हो गई। मैना को जब पिंजड़े में उदास बैठी देखती तो वह उससे मीठी २ बातें करती और उसका दिल बहलाने के लिए कहती—'माही आया, माही आया।' न मालूम इससे तारो का आशय किसके माही से था। मैना के या अपने ? फिर यूँ कहने से अपने दिल की हसरत अवश्य प्रकट हो जाती थी। वरना जहाँ तक आने का सम्बन्ध है न वहाँ मैना का माही पर मार सकता था और न तारो का माही ही आने का कष्ट उठाता था। मैना ने अब तक शायद माही के साथ रसमय जीवन बिताया हो। जवानी की आनन्दमय बहारें देखी हों। अपनी भाषा में प्यार और मुहब्बत की बातें भी की हों। लेकिन तारो ने अपने माही को केवल दो बार देखा था। एक बार राह चलते की मुलाक़ात जब वह और उसका कुत्ता तारो का रास्ता रोके खड़े थे और आंखें फाड़ २ कर उसकी ओर देख रहे थे। दूसरे सुहागरात; कितनी उमंगें थीं और कितने अरमान थे उसके मन में ! लेकिन राजा धर्मपाल सिंह शराब के नशे में उसके कमरे में आया। उसने न प्यार किया न ठोड़ी सहलाई, न अपनी कही और न उसकी सुनी, बल्कि आते ही अपनी बलिष्ट बाहों में उसके कोमल शरीर को जकड़ लिया—जकड़ लिया और बस। तारो के मन में बातें करने की हसरत ही रह गई। वह ख़ुद किस तरह शुरू करती ? एक तो कुमारपन की लज्जा, दूसरे वह रानी हो जाने के बावजूद देहाती लड़की थी। एक राजा के सामने कैसे बोलती ? शायद कुछ दिन का मेल जोल

राजा से परिचित कर देता और वह उसके मन की रा । सोचते, चहचहाती । मगर अब तो वह उस फूल के समा र देखती तो माली के निर्दयी हाथ ने टहनी से तोड़ कर एक रेशम है । अवण में बन्द कर दिया हो और जहाँ उसकी सुगंध, ात्मा तक में मुस्कान धीरे धीरे नष्ट हो रही हो । प से अलग

तारो जब अपने पलंग पर लेटती तो उसे ो नहीं की । तसवीर नज़र आती । पहले पहल उसने उस प कर उसका मुहब्बत की निगाहें भी डाली थीं । यह वह समय अथवा फिर रानी बनने का चाव और राजसी ठाठ से लगाव निकट कोठी प्यार का स्थान शिकवा और शिकायत ने ले लिया कहानी प्रगट यह थी कि उसे इस तसवीर का देखना भी अच्छा बहिन ! रानी अगर अनजाने भी दृष्टि उस पर जा पड़ती तो वह वाई है ।" लेती, उसका मन घृणा से भर जाता, दिमाग़ में ए मिल जाय." लगता जिसमें यह तसवीर नाचने लगती । फिर दूसरी तसवीर अलग होती । शराब में मस्त राजा और व्यवहार से पास पास खड़े दीख पड़ते । तारो के लिए अकेले ह रो रो कर हो जाता । वह नैना को पास बुला लेती और उसे कपके से कान में को कहती । तो मुझे बुला

इस चित्र के अतिरिक्त एक दूसरा चित्र था जो में प्रायः उभर आता था । उसकी आँखों में बर्व चाहा । लेकिन मुस्कराहट खेलती थी । एकान्त के इन दिनों ने इस पर भरोसा कर और भी स्पष्ट कर दिया था । जब कभी वह दो सहारे थे ।

: सखी सहेलियों को याद करती करती गाँव के स्वतन्त्र
एक प्रकार ' में जा पहुँचती, वहाँ की गलियों, पनघट और खेतों
उदास बैठी यह चित्र आगे आकर उसका मार्ग रोक लेता। ठीक
उसका दिल जिस प्रकार उस दिन राजा और उसके खूँख्वार कुत्ते
न मालूम क्या था। तारो मिन्नत करती, कन्नी काटती मगर यह
या अपने ? दूर हठी था कि सामने से हटने का नाम न लेता।
प्रकट हो जा हुये बाँहें फैला देता और तारो को छाती से लगा लेने
वहाँ मैना को आगे बढ़ता। तब तारो के दिल से एक हूक उठती और
आने का कणयोग से इच्छा करती कि क्या ही अच्छा होता अगर
रसमय जीव भवन में बन्दी बनने की अपेक्षा श्रवण के घर की
हों। अपनी। वह हल चलाता, मैं रोटी लेकर जाती और हम
लेकिन तारो किनारे वृक्ष की ठंडी छाया में बैठ कर प्यार और
बार राह चलते करते, फ़सल पकने के स्वप्न देखते।
रास्ता रोके र अपनी प्रिय सख ' जो स्मरण हो आती।
थे। दूसरे सु । ले ले कर वह उसे कितना तंग करती थी। वह
उसके मन में थीं और दोनों में इतना अपनापन था कि एक के
उसके कमरे सरी से छिपी न थी। उसकी अपनी शादी के कुछ
न अपनी कई की शादी भी थी। तारो के मन में हसरत ही रह
चाहों में उस । समय गाँव में न हुई। वह देख तो लेती कि
और बस। त तेजो का पति कैसा है। दो मज़ाक करती, दो
वह खुद फिर र फिर विदा होते समय यह भी तो कहती—
दूसरे वह रा "बहिन को प्यार से रखना, रुलाना नहीं।"
राजा के सा

वह यों ही सोचने लगती कि यह जीजा कैसे होंगे। सोचते, सोचते, जब वह उनका कल्पित चित्र तैयार करती और देखती तो चकित रह जाती कि सामने खड़ा श्रवण मुस्करा रहा है। श्रवण उसकी जवान ज़िन्दगी पर छाया हुआ था। उसकी आत्मा तक में समा गया था। क्या वह उसे निकाल कर अपने आप से अलग कर सकेगी? उसे उसने कभी निकालने की कोशिश ही नहीं की। कह नहीं सकते कि अगर तारो को राजा के साथ रह कर उसका प्यार प्राप्त होता तो वह आप ही आप निकल जाता अथवा फिर भी नहीं। क्योंकि जब राजा ने उसके गाँव के निकट कोठी बनवाना आरम्भ किया था और जब उस प्रेम की कहानी प्रगट हुई थी तो तेजो ने उससे कहा था— "मुबारिक हो बहिन! रानी बनने चली हो। राजा ने यह कोठी तुम्हारे लिये बनवाई है।"

"आग लगे इस राजा को। मुझे तो मेरा श्रवण मिल जाय।" तारो ने रो दिया था।

"बहिन! दुःख न करो। आदमी का पता व्यवहार से चलता है।" तेजो ने तसल्ली दी थी और जब वह रो रो कर सखियों से गले मिल रही थी तो इस तेजो ने चुपके से कान में कहा था—"तारो, अगर राजा कभी तुझे न चाहे तो मुझे बुला लेना।"

कभी क्या राजा ने तो उसे एक दिन भी नहीं चाहा। लेकिन न वह तेजो को बुला सकती थी और न श्रवण पर भरोसा कर सकती थी। अब तो नैना और मैना ही उसके दो सहारे थे।

एक की बातें सुनकर जी बहलता था और दूसरे को मन की बातें सुनाकर सांत्वना मिलती थी। महल में दूसरी रानियाँ भी थीं। मगर हर एक का अपना अपना ग़म था और हरएक की अपनी अपनी राम कहानी थी। कोई किसी से बोलना पसन्द न करती थी। कोई किसी को देख कर ख़ुश न होती थी। जब से आयी थी इस महल में रहती थी जिसका प्रबन्ध एक सरदार के सुपुर्द था। वह ड्योढ़ी सरदार कहलाता था। अन्दर का सब काम दासियाँ करती थीं। उन्होंने भी बस सुहाग को रात ही राजा को देखा था। महल के हर कोने से आहें उठती थीं और उनका अंग अंग दर्द करता था।

तारा ऊपर की मंज़िल में रहती थी। कमरे के आगे बरामदा था। उस बरामदे के खिड़कीनुमा दरवाज़े बाज़ार में खुलते थे और उन पर हर वक्त चिकें पड़ी रहती थीं। तारा जब अकेलेपन से बहुत उकता जाती तो किसी चिक के पास आ बैठती और बाज़ार में चलते फिरते लोगों को देखती। तब उसे कहीं मालूम होता कि रानी बनते ही जिस दुनियाँ से उसका सम्बन्ध टूट गया है वह अब भी उसी तरह आबाद है और इस दुनिया में मर्द भी बसते हैं। मगर उनसे मिलने जुलने और हँसने बोलने में वह भी उतनी ही विवश है जितनी कि उसकी मैना दूसरे पक्षियों के साथ मिल कर उड़ने और चहचहाने में।

एक दिन जब तारा चिक के पीछे बैठी बाज़ार में गुज़रते लोगों को देख रही थी तो उसे बीस बाइस आदमी दो दो की

पंक्तियों में चलते नज़र आए। उनके शरीर पर एक ही प्रकार के मोटे और ढीले ढाले कपड़े थे और पाँव में बेड़ियाँ थीं। जब वह चलते थे तो इन बेड़ियों से झंकार पैदा होती थी और लोगों का ध्यान निसन्देह उधर खिंच जाता था। उनके पीछे बंदूक कँधे पर रखे एक सिपाही ऐसे चल रहा था जैसे एक चरवाहा लाठी के बल बहुत से पशुओं को हाँके जा रहा हो। वह राजा के क़ैदी थे और किसी काम पर जा रहे थे। तारो सिपाही को उस वक्त तक देखती रही जब तक कि वह नजरों से ओझल न हो गया। फिर भी देखने की हसरत बाक़ी थी। न मालूम उसे सिपाही में कौन सी जानी पहचानी सूरत नज़र आ रही थी।

[४]

तारो सारा दिन क़ैदियों और सिपाही के बारे में सोचती रही। उसने क़ैदियों की बात सुन ज़रूर रखी थी मगर उन्हें देखा कभी न था और देखने की इच्छा भी नहीं की थी। क्योंकि उनके विचार ही से भय लगता था। एक बार उसके चचा का लड़का शराब पीने के जुर्म में पकड़ा गया था और वह छः माह जेल में रहा था। जब गाँव में वापिस आया तो वह सुनाया करता था कि जेल में बड़ी तकलीफ़ होती है। वहाँ बड़ा दुःख सहना पड़ता है। फिर भी तारो यह नहीं जानती थी कि उन्हें वहाँ किस प्रकार रखा जाता है। उनके पाँव में बेड़ियाँ भी पहना दी जाती हैं और एक आदमी बंदूक़ कँधे पर रखे उन्हें

इस प्रकार हाँके फिरता है। ये वेड़ियाँ उनके पाँव को काटती तो ज़रूर होंगी। उन्हें चलने में कष्ट हो रहा होगा। उनकी चाल विचित्र और असाधारण थी। उन्हें मजबूर हो कर टाँगें चौड़ी रखनी पड़ती थीं। क्या करते, बेवसी, मजबूरी! तारो का दिल उनके लिए सहानुभूति से भर गया। उसे उनके प्रति समवेदना अनुभव हुई। जैसे वह स्वयं भी एक .कैदी हो उन्हीं की तरह विवश और मजबूर। ये सव भाग क्यों नहीं जाते? लेकिन ·········लेकिन·········उसे चचेरे भाई की सुनाई हुई एक बात याद आई। किसी .कैदी ने भागने की कोशिश की थी तो उसे गोली मार कर घायल कर दिया गया था। उनके पाँव में वेड़ियाँ थीं—भारी भारी लोहे की वेड़ियाँ। जब वह उनके पाँव में छनछन करती थो तो तारो के दिल पर हथौड़े से बरसते थे। उनके पीछे सिपाही बन्दूक लिये सिर पर सवार था ताकि कोई भाग न जाए और कोई हमला करके उन्हें छुड़ा न ले। बड़ी ताक़त छोटी ताक़त को दबा कर रखती है।

.कैदी उदास थे लेकिन सिपाही मुस्करा रहा था और अकड़ता हुआ चला जा रहा था। वह उन सब से लंबा था। दूर ही से दिखाई देने लगा था और देर तक नज़र आता रहा था और तारो उसे देखती रही थी आश्चर्य के साथ। अब भी वह उसके कल्पना पट पर छाया हुआ था और वह सोच रही थी कि उसने उसे कहीं देखा जरूर है। मगर याद नहीं पड़ता था कि कब और क़हाँ देखा है। उसका वह लम्बा क़द, चौड़े चौड़े कन्धे, मुस्कराता

हुआ चेहरा बारबार तारो के मस्तिष्क में उभर आता था। वह अपने आप से पूछती थी 'आखिर यह है कौन ? इसकी शकल श्रवण से मिलती है। कहीं यह श्रवण ही तो नहीं ? सरकारी वरदी पहन कर आदमी कुछ न कुछ तो बदला हुआ दिखाई देने ही लगता है। लेकिन उसे ज़रूरत क्या पड़ी थी यहाँ आने की ? उसका बाप तो काफ़ी अमीर है। कहीं मेरे ही लिये तो सिपाही बनना स्वीकार नहीं किया ? आखिर उसे क्या अधिकार है मेरा पीछा करने का ? मैं तो एक रानी हूँ, रानी ! अगर मिल जाए तो पूंछू कि तू सिपाही बन कर राजा तो नहीं बन गया। यहाँ तो मुझे रहने के लिये महल और हुक्म चलाने के लिये दासी मिली है और तू ख़ुद मुझे ही दासी बना कर रखता। फिर यह रेशमी कमख्वाब और यह भूषण क्या तू सात जन्म में भी मुझे पहना सकता था ?

उसने होंठ भींच लिए। चेहरे पर गंभीरता छा गई। सारा शरीर ठोस, ठोस—वज्र की नाईं ठोस होता चला गया। जैसे वह धात की बनी हुई मूर्ति हो। पत्थर की प्रतिमा हो, भावनाओं और विचारों से रिक्त। लेकिन जब तक हृदय की गति जारी है आदमी पत्थर नहीं बन सकता। वह भावनाओं और विचारों से रिक्त नहीं हो सकता। उसे फिर ख़्याल आया श्रवण इतना लम्बा तो नहीं। यह सिपाही तो कोई और आदमी है। हर सिपाही की तरह तारो को इस आदमी से भी नफ़रत है। लेकिन श्रवण······ श्रवण······श्रवण से तो वह प्यार करती है और प्यार करेगी

चाहे वह सिपाही ही क्यों न हो……।

दनादन तोपों की ध्वनि से वायुमंडल गूँज उठा। तारो चौंक उठी। तोपों के सतत धमाके ने उसके अस्तित्व को झंझोड़ कर रख दिया। उसने चकित हो कर इधर उधर देखा और नैना से इस धमाके का कारण पूछा तो उसने बताया कि राजा को राज करते पचास साल बीत गये क्योंकि पिता की असमय मृत्यु के कारण वह छोटी उमर ही में गद्दी पर बैठ गया था। अब जुबली मनाई जायगी। महराज उसे मनाने आए हैं। उनके आगमन की खुशी में तोपें चलाई गई हैं। खूब जशन मनाये जाँयगे और शहर में जलूस निकलेगा।

तारो समझ नहीं सकी कि अगर राजा के आने से वाक़ई किसी को खुशी होती है तो तोपों के द्वारा उसकी घोषणा करने की क्या आवश्यकता है और यह जलूस निकालने का मतलब क्या है ?

रात भर उसके मस्तिष्क में क़ैदी और बेड़ियाँ, सिपाही, बन्दूख राजा और तोपें चक्कर लगाती रहीं उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। जितना सोचती थी उतना ही उलझन बढ़ती जाती थी। और, ये विचार ठोस और भयानक रूप धारण करते जाते थे जो उसके इर्द गिर्द यों फुदकते हुए से मालूम होते थे जैसे बाप के घर पर रात के अँधेरे में मोटे मोटे चूहे उछला करते थे। ये विचार उन चूहों से भी अधिक घिनौने और घृणास्पद थे। यह शक्ति और

ऐश्वर्य के प्रदर्शन उसने पहले कभी नहीं देखे थे। अब देखती थी तो उसे उनसे न जाने क्यों नफ़रत ही होती थी। इसका कारण भी हो सकता था क्योंकि उसके वर्तमान जीवन और बीते हुए जीवन में बड़ा ही अन्तर था—एक खाई बन गई थी जिसे पाटने की कोशिश नहीं की गई थी, बल्कि वह प्रतिक्षण गहरी और चौड़ी होती जा रही थी। वह देहात के सादा, शान्त और स्वतन्त्र वायुमण्डल में पल कर जवान हुई थी। वहाँ लोग आपस में लड़ते झगड़ते भी थे। रंग राग भी करते थे और ख़ुशियां भी मनाते थे; मगर न इस प्रकार दिखावा होता था और न किसी को इस तरह पाबन्द रहना पड़ता था। फिर, वह इन सब चीज़ों को जो उसे रानी बन कर देखनी पड़ी थीं ज्यों की त्यों कैसे स्वीकार कर लेती? वह जब मवेशियों के जंगल में चले जाने के बाद गाय के बछड़े को खूंटे से बंधा देखती तो झट खोल देती ताकि वह बिचारा उछल कूद कर और दौड़ धूप कर दिल बहलाए। आज वह ख़ुद अपने आप को बंधनों में जकड़ी हुई महसूस कर रही थी। सिर से पाँव तक सोने के ज़ेवरों से लदी हुई भी उसे यह विवशता अखर रही थी। किसी प्रकार सुख का अनुभव न होता था। जिस राजा का वह इतने दिनों से इन्तज़ार करती रही थी उसका आगमन भी वक्षस्थल में अनायास प्रसन्नता को न उभार सका क्योंकि उसे मालूम हो चुका था कि राजा महज़ जलूस निकलवाने के लिए शहर में दाखिल होता है और इस महल में तो वह भूल कर भी क़दम नहीं रखता। फिर तारो के

लिये उसका आना न आना बराबर था।

इसके बावजूद भी एक आशा धीरे धीरे मन के किसी अज्ञात जोश से सिर उठाने लगी। विजन जंगल में खोया हुआ मुसाफ़िर जिस ओर जरा सी पगडंडी देखता है उसी ओर चल खड़ा होता है तारो ने सोचा कि मैं सब रानियों में सुन्दर हूँ, जवान हूँ और नई आई हूँ। शायद राजा को मेरा ख्याल आ जाए। वह .खुद शहर में न आए मुझे तो शहर से बाहर बुला सकता है। उसके शरीर में रोमांच सा उत्पन्न हुआ और वह इठला कर पलंग से उठ खड़ी हुई। कानस के निकट जाकर कितने ही दिनों बाद आइना देखा। खुश्क होंठों पर मुस्कराहट खिल रही थी। चेहरे पर क्रीम मली, कंघी पट्टी की, मांग भरी और संवर कर इन्तज़ार करने बैठ गई। नैना ने उसे देखा तो वह मन ही मन मुस्कराई। लेकिन कुछ बोली नहीं। तारो ने आप ही कहा, "देखो नैना, कानस की चीज़ें झाड़ पोंछ कर अच्छी तरह रख दो।"

"बहुत अच्छा", नैना ने कहा और वह चीज़े संवारने में लग गई।

"इनमें फूल भी रख देना लाकर", तारो ने पाँच मिनट बाद फूल दानों की ओर इशारा करके कहा।

"बहुत अच्छा", नैना ने उत्तर दिया और वह अपने काम में लगी रही।

बेचैनी क्षण क्षण बढ़ रही थी। जिस चीज़ के लिए जी

चिरकाल से तरस रहा हो उसके लिये एक क्षण भी इन्तज़ार करना कठिन है। इन्तज़ार की घड़ियाँ बड़ी और दुखदायी होती हैं। उसके मन की शांति ऐसे नष्ट होगई जैसे बरतन के पेंदे में सुराख कर देने से तमाम पानी बह जाता है।

"वह चिक टेढ़ी होगई है। उसे सीधा क्यों नहीं किया ?" चन्द मिनट चुप रहने के बाद तारो ने फिर दासी से कहा।

"अब कर देती हूँ सरकार।" नैना ने गर्दन घुमा कर सोफ़े पर बैठी तारो की ओर देखा और तनिक मुस्करा दी। इस मुस्कराहट ने तारो का सारा जोश सर्द कर दिया जैसे हज़ारों घड़े पानी उस पर उँडेल दिया गया हो। जिस दिन से साड़ी वाली घटना हुई थी उस दिन से न तो नैना ने कभी सरकार कहा था और न कभी तारो ने उसे आदेशपूर्ण ढंग से पुकारा था। वह तो उसे एक काम भी करने को न कहती थी। कोई चीज़ कहाँ और किस हालत में पड़ी है तारो को कुछ भी परवाह न थी। अगर थोड़ा बहुत कुछ करना भी होता था तो नैना को कहने के बजाय स्वयं अपने हाथ से कर लेती थी। सारा दिन चुपचाप रहती। नैना उसका मन बहलाने के लिये दस बातें करती तब कहीं एक बात उसके मुख से निकलती। लेकिन आज एक काम अभी ख़त्म नहीं हुआ था कि दो काम ऊपर से और बता दिये। आज उसके लहजे में आदेश भरा था। वह फिर रानी बनी हुई थी।

लेकिन यह सब कुछ उसे मालूम नहीं था ? उसका सारा

ध्यान कहीं और केन्द्रित था। वह अपने वातावरण तक से बेखबर थी । ये सारी बातें उसने अन्यमनस्कता से कहीं थीं । नैना ने "सरकार" पर ज़ोर देकर और मुस्करा कर उसे उसकी हालत का एहसास कराया तो वह लजा गई और सोफ़े से उठ कर मैना के पिंजड़े के पास जा खड़ी हुई। खिड़की खोल कर उसे बाहर निकाला, चोगा दिया, पानी पिलाया और चोंच को उँगलियों में पकड़ कर सहलाने लगी। मैना उससे अब हिल मिल गई थी। उसे तारो का यह प्यार पसन्द था। वह प्रसन्न होकर बोलने लगी—"माही आया, माही आया।"

"देखो नैना ! अब तो हमारी मैना खूब बोलती है।"

"जी हाँ और मन की बात समझती भी है।"

"तारो के दिल पर चोट सी लगी और वह चिढ़ कर बोली, "क्यों मज़ाक करती हो मुझसे ?"

"मैंने मज़ाक तो नहीं किया सरकार और न कुछ झूठ ही कहा है", नैना ने शांत और संयत स्वर में उत्तर दिया। उसकी आँखें तारो की क्रोध से फैली हुई आँखों में गड़ी हुई थीं जैसे कह रही हो "मैना न समझती हो तुम्हारे मन की बात। मैं तो समझती हूँ। कहो, क्या मैंने झूठ कहा है ?"

तारो इन्कार किस तरह करती ? उसने गर्दन झुका ली और धीरे से पूछा "तो क्या वह आ भी जाते हैं ?" इस प्रश्न में प्रसन्नता की अपेक्षा दुःख और हसरत भरी थी। नैना का नम

दया से भर गया। वह कोई जवाब देना नहीं चाहती थी। तारो की आँखें एक बार फिर उठीं। अबकी उनमें एक बहुत बड़ा प्रश्नात्मक चिन्ह बना था।

"नहीं," नैना ने उसे राजा की जो जीवनी सुना रखी थी उसका एक पृष्ठ खोलकर सामने रख दिया।

लेकिन यह जवाब भी उसके वक्षस्थल की आग को ठंढा न कर सका। जवानी की आग जब भड़क उठती है तो सात समुन्दर भी उसे बुझा नहीं सकते। उसने तो राजा के महल में आने की बात शुरू ही से न सोची थी। वह तो कुछ और ही उम्मीद लगाए बैठी थी और यह प्रतीक्षा इसी उम्मीद पर निर्भर थी। उसके मन में दूसरा सवाल यह उत्पन्न हुआ—"क्या वह महल से बाहर भी किसी को नहीं बुलाते?" लेकिन उसने यह नैना से पूछा नहीं। आप ही फ़ैसला कर लिया। चाहे पहले किसी को न बुलाया हो लेकिन अब तो बुलाया जा सकता है; और वह इन्तज़ार करती रही। वह राजा को पसन्द न करे, लेकिन राजा ने तो उसे पसन्द किया था। इतनी बड़ी कोठी बनवाई थी। ब्याह रचाया था। अब इस प्रकार उपेक्षित किया जाना वह अपनी सुन्दरता का निरादर समझती थी और उसके भीतर की नारी यह निरादर सहन करने के लिए तैयार न थी।

वह इन्तज़ार करती रही। दिन ढला। शाम हुई और इन्तज़ार बढ़ता गया। वह चारपाई पर करवटें बदलती रही।

न जाने कितना समय प्रतीक्षा में बीत गया। उसने रात की निस्तब्धता में बारह बजते हुए सुना। मगर उसे अब भी बुलावा आने की आशा बाक़ी रही। उसके होंठ सूख गये। कलेजा जल उठा। गले में काँटे से चुभने लगे। उसने नैना को जगाकर पानी माँगा। दो तीन ग्लास बर्फ़ ऐसे ठंडे पानी के पिए। फिर भी कलेजे की दाह कम न हुई।

वह फिर करवटें बदलने लगी। उसे नींद नहीं आती थी। मैना के पिंजड़े में फरफराहट हुई। तारो चिल्लाई, 'बिल्ली, बिल्ली।" उठकर बिजली जलाई। पहिले मैना के पिंजरे की ओर और फिर इधर उधर देखा। वहाँ न बिल्ली थी, न बिल्ला। मैना अपने पिंजरे में दुबकी बैठी भय के मारे काँप रही थी। तारो ने उसे पिंजरे से निकाला और छाती से लगा लिया। दो दिल एक साथ धड़कने लगे। एक का भय और दूसरे की बेचैनी परस्पर मिल गये। दोनों के सीने धड़क रहे थे। दोनों परेशान थीं। लेकिन नैना बूढ़ी थी, वह निश्चिन्त सो रही था। उसके ख़र्राटे रात के सूने वातावरण में गूँज रहे थे।

[५]

नाच और गाने की महफ़िलें गर्म हुईं। सिलवर जुबली का जशन धूमधाम से मनाया जाने लगा। शहर ही में रंडियों की संख्या बहुत काफ़ी थी। एक रंडी उनरी जान शाही ख़ज़ाना से पाँच सौ रुपये महीना वज़ीफ़ा पाती थी और वह शाही

रंडी कहलाती थी। उसके रंग रूप और मधुर गले का लोहा न केवल राज्य कर्मचारी मानते थे बल्कि जन साधारण में भी चर्चे रहते थे। उसके अतिरिक्त राजधानी की रंडियाँ महलों में बसने वाली रानियों की तरह अनगिनती थीं और अपनी उदार मुस्कान से निर्धन प्रजा को जीवन प्रदान करती रहती थीं। फिर भी इस उत्सव की शोभा बढ़ाने के लिये दिल्ली, लखनऊ और कलकत्ता के बाज़ारों की बेहतरीन रंडियों को आमंत्रित किया गया। उनके संगीत से राजधानी का वायु मंडल मुखरित हो उठा। नाच की महफ़िलों में सारे दिन मधुर मधुर पायल बजती और रात को इन महफ़िलों के समाप्त होते ही बड़े बड़े राज कर्मचारियों के मकानों पर रङ्गरलियाँ मनाई जातीं। जिसका पद जितना ऊँचा था वह उतनी ही अच्छी रँडी चुन लेने का अधिकार रखता था।

जब बाहर रंग राग हो रहे थे तो महलों में क्यों धूमधाम न होती? रानियों के लिए ज़िन्दगी में और रखा ही क्या था? वह खेल तमाशों में वक्त गुजारती हैं। कभी कभी खेल में हार जीत के द्वारा भाग्य की आज़मायश होती। लेकिन प्रायः "देवर भाभी" खेला जाता था। हर एक बाज़ी के अन्त में खूब क़हक़हे बुलन्द होते। पति पत्नी को प्यार भरी निगाहों से देखता। वह शरमाती, और देवर फफतियाँ कसते। हँसी हंसी में दिल की भड़ास निकल जाती। अब जुबली का उत्सव था। उन्हें खुल खेलने का मौक़ा मिला था दासियाँ बाहर के समाचार आकर सुनातीं।

जिस प्रकार बाहर जशन मनाए जाते रानियाँ भीतर उसी प्रकार स्वांग भरतीं। एक राजा, कुछ राज कर्मचारी और कुछ रंडियाँ बनतीं। दरबार लगता। ख़ूब ठाठ से मुजरे होते। सारा दिन "हाय री नज़रिया, पतली कमरिया, मार डाला हो," का पाठ होता। रात को बनावटी अहलकार अपनी अपनी अपनी प्रेयसि वेश्या को बग़ल में लेकर एकान्तवास में चले जाते।

तारो महल में नई नई आई थी और वह भी रानी बनकर। उसे अपनी मान प्रतिष्ठा का एहसास था। वह महलों के रंग ढंग और तौर तरीक़े से अपरिचित थी और दूसरी रानियों से भी जान पहचान नहीं थी। उसे मालूम नहीं था कि इस घुटे घुटे वातावरण में खुल कर साँस किस प्रकार ली जाती है। वह जब खेल तमाशे की बातें सुनती और धूम धमाके की आवाज़ें उसके कानों में पड़ती तो वह चकित हो जाती। वह अपने कमरे की एक खिड़की में बैठी दूसरी रानियों के स्वाँग और महफ़िलें देखा करती। किसी किसी बात पर हँसी भी आती लेकिन बहुधा उसे उल्लास के बजाय दुःख ही होता। जब यह स्वाँग, ये नक़लें और गाने बजाने ख़त्म होते तो वह किसी मनोरम भाव में मुग्ध होने की अपेक्षा अफ़सोस में सर झुकाए बैठी होती और रानियों के क़हक़हे रात की नीरवता में भयानक चीख़ों की तरह गूँजते रहते।

तीसरे रोज़ की महफ़िल का अंतिम दृश्य तो वह किसी प्रकार भी भुला न सकी थी। वह दृश्य तमाम रात मानसिक वेदना का

कारण बना रहा। जैसे जैसे उसे यह दृश्य याद आता था वितृष्णा और घृणा की भावना तीव्र होती जाती थी।

एक बूढ़ी रानी ने राजा का स्वाँग भर रखा था। उसके सिर पर ताज और चेहरे पर झुर्रियाँ थीं, सामने राजकर्मचारी पद के अनुसार बैठे थे। नाच मुजरा हो रहा था। तारो ही की तरह देहात से आई हुई एक नवयौवना रानी शाही वेश्या उमरी जान बनी हुई थी। लगभग सभी रानियाँ, रंडियाँ और अहलकार बन चुकी थीं। और, वह झूम झूम कर, मटक मटक कर गा रही थीं—

"लच्छिए कंवार गंदले-चूस लैंगे पराए पुत तैनूं।"*
और फिर सब रंडियाँ स्वर उठाती थीं—

"चूस लैंगे पराए पुत तैनूं-नी लच्छिए कंवार गंदले।"
और, चारों तरफ़ से वाह! वाह! की आवाजें बुलन्द होती थीं।

उस दिन का यह अन्तिम गीत था। इसके बाद महफ़िल खत्म हुई। अहलकारों ने एक एक कंवार गंदल चुन ली और शायद चूस लेने के लिये उन्हें लेकर चलते बने। राजा ने शाही वेश्या की ओर बाहें फैला दीं और वह उनमें जकड़े जाने के लिए अचल और विमुग्ध खड़ी रही। नकली राजा की आँखों से वही बर्बरता और वही भूख टपक रही थी जो तारो ने शिकार के दिन अथवा ब्याह को पहली रात असली राजा की आँखों में देखी

---

* ऐ लच्छी नवयौवना, तेरा पालन पोषण कंवार गंदेल की तरह हुआ है। पराए पुत्र तुझे चूस कर मज़ा लेंगे।

थी। वह भी इसी प्रकार अचल और शांत खड़ी थी। उसे भी इसी प्रकार बाहों में जकड़ लिया गया था।

वह सारी रात इसी बात को सोचती रही। मन में भाँति भाँति के विचार उठते रहे। राजा रंडी और रानी, तीन शब्द एक पहेली बन कर उसके मस्तिष्क पर छाए हुये थे। उसने गाँव ही में रंडियों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। वे बन ठन कर रहती हैं। नाज़ नखरे दिखाती हैं और ऐश करती हैं। पहले पहल तो तारो को उन पर ईर्ष्या हो आई थी लेकिन जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसे समाज के इस वर्ग से घृणा हो गई थी। आखिर हालत यह थी कि रंडी का शब्द मस्तिष्क में आते ही मन घृणा से भर जाता था और आँखों में समाज के पतन का सारा नक़्शा घूम जाता था। इसके विरुद्ध राजा और रानी उच्चता की पराकाष्ठा को प्रकट करते थे। हरएक कहानी में उनका वर्णन मान और आदर सहित होता था। कहानियों में उनके सिवा और था ही क्या? लेकिन, जब हक़ीक़त देखी तो पतन और उच्चता एक दूसरे में मिश्रित होकर रह गई। रानी और रंडी एक ही स्तर पर बैठी नजर आईं, बल्कि अनेक दृष्टियों से रंडी रानी से अच्छी थी। उसके पास अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित थी। वह किसी को मुस्कान दान देती थी तो उसका मुआवज़ा भी वसूल करती थी। लेकिन रानी! उसकी मुस्कान भी व्यर्थ थी। वह ठीकरों पर बिकी लौंडी थी। कैदी और मजबूर!

पिछली रात तनिक आँख लग गई। वह सुबह देर से उठी।

आज जलूस निकलेगा। बहुत धूम धाम रहेगी। तारो अचकचा कर उठ खड़ी हुई। नहा धो कर कपड़े पहने। आइने में चेहरा देखा। होठों पर लाली मली। होठों के संगम पर हल्की सी मुस्कराहट उत्पन्न हुई। वह रात भर जिन विचारों से बेचैन हो रही थी अब उन से उभरना चाहती थी। उसकी आत्मा को सुख की अभिलाषा थी। इसीलिये उसने यह मुस्कराहट उत्पन्न की थी।

नौ दस बजे जलूस निकला। आगे आगे घुड़ सवार थे जो रास्ता साफ़ करने वाले हल्कारों का काम कर रहे थे। इसके बाद फौजी बैन्ड था। तीस आदमी साथ साथ बैन्ड बजा रहे थे। उन लोगों ने चिट्टी सफ़ेद वर्दियाँ धारण की थीं और वे "शाह सलामत" का राग आलाप रहे थे। बैंड के पीछे पीछे दो हाथी मस्त चाल से चल रहे थे। पहले हाथी पर सोने का हौदा था और हौदे के नीचे रेशमी झालर। हाथी के गले में भी सोने के गहने पड़े थे। इस पर राजा और राज पुरोहित सवार थे। पिछले पर चाँदी का हौदा था और चाँदी के गहने। उस पर राजकुमार और रियासत के बड़े वज़ीर बैठे थे। उनके पीछे दूसरे वज़ीरों की मोटरें और अहलकारों की गाड़ियाँ थीं। फिर पल्टन का रिसाला और सबसे पीछे पैदल सिपाही थे।

जलूस राजसी ठाठ के साथ आगे बढ़ रहा था। लोग घरों की छतों पर, दुकानों पर और बाज़ारों में खड़े, बड़े चाव के साथ यह आन बान देख रहे थे और बैंड की सुहावनी आवाज

पर मुग्ध हो रहे थे। आँख और कान दोनोंको सुख मिल रहा था। उनके जीवन में किसी क्षति की पूर्ति हो रही थी। तभी तो यह भीड़ भाड़ और यह शौक़ था और यह चहलपलह था। बातें हो रही थीं—यह हौदा ख़ालिस सोने का बना है, नहीं पागल, ऊपर पतरा चढ़ा है। रेशमी झालर पर हज़ारों रुपये ख़र्च हुये हैं। इसमें सच्चे मोती चमक रहे हैं और फिर राजा की पोशाक उसकी क़ीमत का क्या ठिकाना। इस ठाट बाट की सामर्थ्य तो राजाओं ही में है। कोई दूसरा क्या उनका मुक़ाबला करेगा?

सचमुच कोई दूसरा उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। यह ठाट बाट देखने को चीज़ है। सराहने की चीज़ है, मुकाबला करने की चीज़ नहीं। ऐसी पोशाक अब बनती ही कहाँ है? यह अचकन और दुपट्टा जिन पर ज़रदोज़ी की गई है, जा बजा मोती टके हैं, पुराने वक्तों में दसवी और बारहवीं सदी में फ्राँस के लुईस दशम् और भारत के मुहम्मद तुग़लक पहना करते थे। कितनी तड़क भड़क है इस पोशाक में। इसके मुक़ाबिले में राजा का अपना चेहरा फीका फीका, प्रतिभाहीन और निष्प्राण दिखाई देता है। शायद राजा को यह पोशाक लूई दशम् और मुहम्मद तुग़लक़ से विरासत में मिली है। और शरीर? शरीर भी विरासत ही में मिला है। लेकिन वह आत्मा मर चुकी है। उस ज़माने की आत्मा अब तक कैसे जी सकती थी। वह मर गई है, उसका घमंड, आत्म सम्मान और शोभा भी मर गई है। यह शरीर नहीं मारा है, महज़ उसे किसी ग़रज़ और

नुमायश के लिये सुरक्षित रख छोड़ा गया है। यह कभी लूई दशम और मुहम्मद तुगलक के सदृश स्वतंत्र और निरकुंश नहीं एक बड़ी ताक़त के हाथ में कठपुतली है। साम्राज्यवाद का खिलौना है।

राजा के पहलू में पुरोहित बैठा है—राज मन्दिर का पुरोहित। वह मनुस्मृति का उदाहरण दे लोगों को उपदेश किया करता है कि राजा का शरीर देवताओं के आठ अंश से बना है। उसका रूप धरती पर भगवान का रूप है। प्रजा का धर्म है कि वह तन मन, धन से राजा की आज्ञा का पालन करे। पुरोहित जी स्वयं भी राजा की आज्ञा का पालन करते हैं। उस राजभक्ति के कारण उन्हें यह मान प्राप्त है कि वह राजा के साथ ही बैठे हैं। वे मनु भगवान को रूप हैं। उन्हें अपनी राजभक्ति पर गर्व है और राजा पर मान है। उस राजा पर जिसका शरीर आठ देवताओं के अंश से बना है। मनु भगवान का कथन कभी पुराना नहीं हो सकता। कभी ग़लत नहीं हो सकता। यह दूसरी बात है कि देवताओं पर से ही लोगों का विश्वास उठ गया हो, उनके अंश का स्वभाव बदल गया हो और जिस सामन्तशाही के महल में वह बैठे हैं वह जर्जर हो चुका हो, उसकी बुनियादों में घुन लग गया हो, उसकी दीवारें गिरना चाहती हों और सिर्फ हिन्दोस्तान को पराधीनता उनका सहारा बनी हुई हो।

तारा भी चिक के पीछे बैठी यह दृश्य देख रही थी। उसकी

निगाहें जलूस के लोगों पर बराबर पड़ रहीं थीं। एक तरफ़ ठाट बाट और सम्पन्नता थी और दूसरी तरफ़ भूख, मज़दूरी और निर्धनता। जब से वह रानी बन कर आई थी उसने ये नंगे और सूखे शरीर पहली बार देखे थे। गाँव में तो ये उतरे हुए चेहरे देखने में आते ही थे लेकिन ग्रामीण निर्धनता की तुलना राजसी ठाट बाट से नहीं होती थी। वहाँ तो हर तरफ़ विपन्नता थी। जब मेह नहीं बरसता था, जब फ़सल पैदा नहीं होती थी तब भी लगान वसूल किया जाता था और सब रुपया शाही खज़ाने में जाता था। वह कई बार सोचा करती थी कि राजा के पास .खूब रुपया होगा। ढेरों के ढेर! आखिर इतना रुपया राजा के किस काम आता है ? लोगों में बाँटता होगा। .खूब दौलत बिखेरता होगा। राजा धर्मात्मा होते हैं। प्रजा का दुःख नहीं देख सकते। लेकिन प्रजा तो .गरीब थी, नंगी थी, भूखी थी। यह भूख और यह विडम्बना, तारा हैरान थी क्योंकि उसने यह दृश्य पहली बार देखा था। लेकिन पहली बार क्यों ? खेतों में आकाश बेल का फूलना इससे भिन्न तो नहीं। नीचे के वृक्ष और पौदे सूख जाते हैं और ऊपर बेल हरी भरी होती है। बेल हरी भरी होती है इसीलिए तो किसान अपने वृक्षों और पेड़ों पर आकाश बेल को बढ़ने नहीं देते। उसे उतार कर फेंक देते हैं।

मगर यह एक दूर की बात थी। वनस्पति और मनुष्य में सम्बन्ध जोड़ना, राजा की आकाश बेल से उपमा देना, एक

देहाती लड़की का काम नहीं था। वह तो सिर्फ़ परेशान थी। उसे इस दृश्य से घृणा थी। और, इस घृणा की तह में व्यक्तिगत भावना को छिपी हुई थी। उसे अपनी भूख और मजबूरी सता रही थी। उसके अन्दर नफ़रत भरी थी। उसे राजा पर क्रोध आ रहा था क्योंकि उसने ज़बरदस्ती शादी करके उसका सब कुछ छीन लिया था, उसे क़ैदी बना दिया था, जेलखाने में ला डाला था। राजा की हर एक बात से उसे चिढ़ थी, इस जलूस से भी चिढ़ थी। उसने हाथी के हौदें, राजा की अचकन और दुपट्टे को नहीं देखा था। उसने राजा के चेहरे को देखा था जो झुर्रियों से भरा था। आँखें सूनी थीं। उनमें आत्मा का अभाव था। उसने राजा को पहले यों नहीं देखा था। अब देखा तो यह असली राजा भी कल वाले राजा से मिलता जुलता दिखाई दिया। ख़ूसट, बुड्ढा और नीच !

तारो घृणा की तीव्र भावना मन में लिये खिड़की से उठ खड़ी हुई और पलंग पर जा लेटी। रात वाले विचार फिर मस्तिष्क में घूमने लगे।

[६]

तारो शांत पड़ी थी। दुपहर को खाना भी अच्छा नहीं लगा था। जब शरीर में और आत्मा में घृणा भरी हो तो खाना कहाँ अच्छा लगता है? वैसे ही दो चार कौर निगल लिये थे। वह सोच रही थी और झुँझला रही थी। शर्म नहीं आती, इस उमर में भी रंडियाँ बुलाता है ! मुँह पर फटकार

बरस रही हैं। मरने के निकट है—मरना ! उसके मन में ठेस सी लगी। हिन्दू औरत कैसी भी दुःखी और मजबूर क्यों न हो वह अपने पति का मरना नहीं सोच सकती। उसका सुहाग लुट जाएगा। वह विधवा हो जाएगी। अब भी तो वह विधवा ही थी। सुहागिन विधवा ! यह महल, यह इतनी बड़ी इमारत सुहागिन विधवाओं से भरी पड़ी थी। इतनी औरतों को क़ैदी क्यों बना रखा है इसने ? सिर्फ़ इसीलिए कि वह राजा है……।

"अब कुत्तों के खेल होंगे। सब जा रही हैं देखने।"

नैना ने आकर ख़बर सुनाई। उसकी निगाहें तारो के विशादपूर्ण चेहरे पर ऐसे पड़ रही थीं जैसे पूछ रही हो "क्या चलेंगी आप भी ?"

तारो को न कुत्तों से दिलचस्पी थी न उनके खेलों से। फिर भी उसने जाने के लिए हामी भर दी। वह जब से आई थी महल की चारदीवारी से बाहर क़दम नहीं निकाला था। बाहर जाने के विचार से उसे एक प्रकार की प्रसन्नता हुई। फिर वह विह्वल विचारों से गला भी तो छुड़ाना चाहती थी। वह कब तक उन्हें लिए बैठी रहे ? वह कब तक द्वेष और जलन से अपनी जान सुखाती रहे ? इस दशा में यह समाचार भी उसके लिए शान्ति सूचक था। खुले खेतों में घूमने वाली तारो की बन्दी आत्मा बाहर जाने के लिए बेताब हो उठी और वह बड़ी अधीरता से चलने का इन्तजार करने लगी।

परेड मैदान में कुत्तों की प्रदर्शिनी थी। मैदान को सुर्ख़ी

और सफ़ेदी से ख़ूब सजाया गया था। एक ओर शामियाने तने थे जिनमें अमीरों, वज़ीरों और उनकी औरतों के बैठने का प्रबन्ध था। इसलिये दरियाँ, ग़ालीचे और कुर्सियाँ बिछी थीं। साधारण जनता ज़मीन पर बैठी थी।

राजा के पास तीन सौ के करीब कुत्ते थे जिनके लिए अलग महकमा खुला था। रहने के लिए विशाल इमारत बनाई गई थी जिसमें असंख्य छोटे छोटे सुन्दर कमरे थे। उनमें कुत्तों के रहने का प्रबन्ध उनकी तबीयत और स्वभाव के अनुसार किया जाता था। इमारत के आगे खुला मैदान था। उसमें तार लगाकर अनगिनत जंगले बना दिये गए थे। कुत्तों को सुबह शाम उनमें दौड़ने और चहल. कदमी करने के लिए छोड़ दिया जाता था। जिस सड़क पर यह इमारत स्थित थी उस पर से गुज़रने वाले राहियों को इन कुत्तों की आवाज़ें ऐसी भली मालूम होती थीं जैसे छन्द पढ़ रहे हों। जब पेट भरा हो तो आवाज़ में मनोहरता उत्पन्न हो ही जाती है। इन कुत्तों के खाने पीने का समुचित प्रबन्ध था। प्रति दिन बीसों बकरे उनकी ख़ातिर काटे जाते थे ये ख़ुराक के अतिरिक्त उनके स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाता था। दो निपुण डाक्टर इस काम पर नियत थे। वे कुत्तों को नहलाने धुलवाने के अलावा रुचि और ऋतु परिवर्तन के अनुसार ख़ुराक भी निश्चित करते थे। राजा के निजी ख़र्च में से पाँच लाख वार्षिक उन कुत्तों के निमित्त था। अगर पाँच लाख की जगह साढ़े पाँच लाख ख़र्च हो जाए तो

भी मामूली बात थी।

देश विदेश से भाँति भाँति के कुत्ते जमा किए गए थे। किसी के शरीर पर घने बाल हैं तो इस क़दर साफ सुथरे और चमकीले मानो रेशम के गुच्छे हों। किसी का क़द ऊँचा और शरीर दुबला है मगर चुस्ती और चालाकी का पुतला दीख पड़ता है। किसी के शरीर पर विचित्र और विलक्षण धारियाँ हैं। कोई भेड़ियानुमा है कोई लोमड़ी के सदृश मक्कार है; तो कोई गीदड़ से मिलता जुलता है। यह इंगलैण्ड, यह फ्रांस, यह रूस और यह न्यूज़ीलैंड का है। किसी की गरदन लम्बी, किसी की छोटी और किसी के मुँह पर बड़ी बड़ी मूँछें हैं।

इन कुत्तों का खेल देखना विनोद पूर्ण था। लोग न सिर्फ़ शहर से बल्कि आस पास के देहात से भी यह नुमायश देखने आए थे। वज़ीर अमीर कुर्सियों पर डटे हुए थे। उनके बाल बच्चे और रिश्तेदारों से शामियाने भरे थे। रानियाँ भी मोटरों और बग्घियों में बैठ कर आई थीं। उन्हें आज सौभाग्य से बाहर निकलने का मौक़ा मिला था। उनके लिए कनातें लगाकर बैठने का अलग प्रबन्ध किया गया था। लेकिन उनमें से अनेकों ने बग्घियों में ही बैठे रहना पसन्द किया। क्योंकि कनात के बजाय बग्घी से दृश्य दर्शन अच्छी सकता था।

तारा भी एक तरफ़ बग्घी में बैठी थी। उसने कुत्तों को देखा था। लोगों को, देहातियों को देखकर उसका ध्यान गाँव की ओर

घुस गया था। उसे घर याद आता था। माता पिता याद आते थे। सहेलियाँ याद आती थीं और श्रवण याद आता था। श्रवण वह नुमायश देखने भी तो आ सकता है। उसने लोगों को विशेष कर देहाती नौवजवानों को बड़े ध्यान से देखना आरम्भ किया। उनके चौड़े चकले सीने और हर्ष युक्त चेहरे बहुत ही भले मालूम होते थे। लेकिन जिस चेहरे की उसे तलाश थी वह उसे कहीं नज़र न आया। उसकी निगाहें अपने गाँव की तरफ़ उठ गईं। लेकिन वह क्षितिज के दामन में छिपा हुआ था। दामन बहुत ही मोटा और गहरा था। उसे चीर सकना सम्भव नहीं था। निराश दृष्टि खुले नीले आकाश पर तैरने लगी। क्षितिज से ज़रा इधर सफ़ेद बादल की एक लम्बी पतली और बेडौल सी लकीर दूर तक फैलती चली गई थी। तारो की दृष्टि इस लकीर पर अँटकी हुई थी कि एक ओर काली लकीर क्षितिज की ओर से प्रकट हुई। लेकिन यह काली लकीर सफ़ेद लकीर की तरह ठहरी हुई नहीं थी। गतिमान थी। वह हसरतों का धुआँ नहीं जीवन का चिन्ह थी। इसलिये वह बेडौल भी नहीं थी। उसमें एक तरतीब थी, मनोरमता थी। वह सारसों की पंक्ति थी। एक सारस नेतृत्व कर रही थी। बाकी तीन पंक्तियों में बँटी तैरतीं, नृत्य करती और मधुर राग अलापती हुई आ रही थीं। और एक पीछे रह कर संरक्षण कर रही थी। वह प्रतिक्षण आगे बढ़ती आ रही थी। सम्भवतः वह गाँव से आई थी। गाँव में जब गेहूँ उगता है तो सारसें आती हैं। गाँव में गेहूँ

है, जिन्दगी है, सारसें हैं। तारो भी अपनी सहेलियों के साथ इन सारसों के सदृश गेहूँ के खेतों में इठलाया करती थी। वह गाँव से उसकी सखियों का कोई संदेशा लेकर आ रही थी। वह ठीक उनकी ओर देखने लगी। उनका संगीत सुनने लगी तो उन्होंने वह चक्कर काटा। स्वर ऊँचा उठा। वह फिर आगे बढ़ी संगीत का स्वर फिर धीमा पड़ गया। वह इस प्रकार नृत्य करती, गाती और इन्सान के पतन पर मुस्कराती हुई आगे गुज़र गई। जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी तारो उन्हें देखती रही और उनके ओझल हो जाने के पश्चात भी वायुमंडल में उनका राग सुनती रही।

खेल शुरू हुए। उन्हें देख कर मालूम होता था कि दुनियाँ भर की समझ बूझ इन कुत्तों के हिस्से में आई है। दौड़ना और शिकार पर झपटना तो साधारण बात थी। उन्होंने खोज लगाने और चिट्ठी रसानी में भी कमाल कर दिखाया। एक भूरे रङ्ग का कुत्ता वैसे तो बहुत ही सीधा साधा और आवारा क़िस्म का मालूम होता था लेकिन उसे आदमी दिखा दिया जाता था। फिर उसके गले में चिट्ठी बाँध कर उस आदमी के पास ले जाने को कहा जाता था। वह आदमी चाहे सैकड़ों आदमियों में ही क्यों न छिप कर खड़ा हो कुत्ता चिट्ठी उसके पास ले जाता था। इसके बाद एक मझोले क़द का घनें बालों वाला कुत्ता आया। उसे गेंद या कोई दूसरी वस्तु दिखा दी जाती थी। फिर गेंद अथवा उस वस्तु को उसी प्रकार की बहुत सी वस्तुओं के

मध्य में रख दिया जाता था। वह कुत्ता आता था और बड़े इत्मीनान से केवल उसी वस्तु को उठा लेता था। उसका यह करतब देख कर आश्चर्य होता था। इतनी वस्तुओं के बीच से उस वस्तु का पहचान लेना हुशियार आदमी के लिये भी कठिन है।

एक विदेशी कुत्ते ने खेल दिखाया। एक आदमी ज़मीन पर चित लेटा था। वह मार्ग में किसी तरह बेहोश हो गया था। अब उसे सही सलामत घर पहुँचाना इस कुत्ते का काम था। उसने आदमी की कमीज़ को पंजों में पकड़ कर धीरे धीरे ऊपर उठाया और बड़ी सावधानी से उसे दाँतों में पकड़ कर आदमी को उठा लिया और लेकर चलता बना।

दर्शकों में एक दम हलचल हुई। वज़ीर, अहलकार और दर्शक एक तरफ़ को देखने लगे! उस तरफ़ से बढ़ता हुआ राजा स्वयं रंग मंच पर आया। एक कुत्ते ने आगे आकर उसकी सलामी उतारी। सादर सिर झुकाया, फिर अगले पंजे और थूथनी राजा के क़दमों पर टेक दी। फिर पवित्र चरणों को पवित्र रज में लोटने लगा। राजा ने झुक कर उसे ज़रा थपकी दी। वह शरीर झटक कर उठ खड़ा हुआ और राजा के सामने खड़ा होकर दुम हिलाने लगा। कुत्ता दुम हिला रहा था और राजा देख देख कर प्रसन्न हो रहा था। जो ख़ुद किसी के सामने दुम हिलाने का आदी होता है जब वह दूसरे को अपने सामने दुम हिलाते देखता है तो उसे सचमुच प्रसन्नता प्राप्त होती है।

अब राजा ने .खुद सैकड़ों खेल दिखाये। कुत्ते उसके मामूली मामूली संकेत को समझते हुये मालूम होते थे। वह उसकी छड़ी की हरकत पर इस तरह नाचते थे जैसे छड़ी और उसके दरम्यान कोई अटूट सम्बन्ध हो। वे किसी अदृश्य तार के द्वारा इस छड़ी से वंधे हैं और कठपुतलियों की तरह नाच कर रहे हैं। कुछ लोगों का ख़याल था कि राजा का तप तेज और प्रताप, कुत्तों से यह नाच नचवा रहा है। किसी ने झूठ तो नहीं कहा कि भय के आगे भूत नाचते हैं। यह भूत नाचने का आँखों देखा उदाहरण था यह भय रोब और दबदबा है तभी तो इतने मनुष्यों पर राज कर रहा है। दबदबे के आगे इन कुत्तों की क्या मजाल? एक पंडित जी के मतानुसार तो उन्हें कुत्ते कहना ही ग़लत था। वह तो देवताओं के प्रियचर थे जो किसी शाप के प्रभाव वश कुत्तों की योनि में आ पड़े हैं। हो सकता है पंडित जी की इस राय से किसी को मतभेद हो लेकिन इस बात पर अकसर लोग सहमत थे कि इन कुत्तों ने गत जन्म में कुछ भले काम अवश्य किये थे जिससे उन्हें कुत्ते हो कर भी यह सुख और आराम प्राप्त है।

इस भीड़ में कुछ लोग ऐसे भी थे जिनका सोचने का ढंग औरों से अलग था, जो कुत्तों को महज़ कुत्ते ही समझते थे। वे ऐसे लोग थे जो पहले बहुत से सरकस और नुमाइशें देख चुके थे। वे काना फूसी कर रहे थे कि उन्हों ने कुत्तों को कौन-कौन से विचित्र खेल करते देखा है अथवा कुत्तों के बारे में क्या कछ पढ़

रखा है। उनकी बातों में निश्चय ही कहीं कहीं अविश्वासनीय अतिशयोक्ति थी। इतिहास के ज्ञाता एक सज्जन कह रहे थे कि शिवाजी के पास एक ऐसा कुत्ता था जो सूंघ कर जासूस का पता लगा सकता था। जब शिवाजी अपनी सेना का निरीक्षण करने जाते तो यह कुत्ता उनके साथ रहता, अगर शत्रु सेना का कोई आदमी जासूसी के उद्देश्य से मरहठों की सेना में भरती हो जाता अथवा मरहठा-सेना का कोई सैनिक दुश्मन से मिल गया होता तो यह कुत्ता उसे पकड़ कर झट बाहर निकाल लेता।

लोग राजा और उसके कुत्तों के खेल आश्चर्य और विनोद से देख रहे थे। कह नहीं सकते उन्हें कुत्तों से अधिक दिलचस्पी थी अथवा राजा से। प्राचीन काल से कहावत चली आती है—जैसा राजा वैसी प्रजा। इसलिये उन्हें कुत्तों से दिलचस्पी थी क्योंकि उनका राजा भी कुत्तों से दिलचस्पी रखता था। दरअसल ये कुत्ते ही उसकी प्रजा थे। प्रजा का पालन राजा का धर्म है; और वह अपने धर्म का पालन कर रहा था। राजा और प्रजा, प्रजा और राजा! न जाने किस मनचले ने इस कहावत को यों बदल दिया है—जैसी प्रजा वैसा राजा!

अन्तिम खेल में एक बड़े कद के भेड़ियानुमा कुत्ते ने उकड़ूँ बैठकर भगवान से राजा के लिये दीर्घआयु की प्रार्थना की।

जब ये खेल हो रहे थे तो तारो कुछ और ही देख रही थी। कुछ दूर पर एक सिपाही खड़ा था। उसकी नजर बार बार इस सिपाही पर पड़ रही थी। यह वही सिपाही

था जो उस दिन क़ैदियों को लिये जा रहा था। लेकिन वह आज स्पष्ट देख सकती थी कि वह श्रवण नहीं था। आखिर उसे क्या गरज़ पड़ी थी कि वह यहाँ आता और नौकरी करता। तारो को महज़ धोखा हुआ था —सुन्दर धोखा !

[७]

जुबिली का उत्सव समाप्त हुआ। बड़े बड़े अहलकारों को इनाम और पारितोषक दिये गये। हाज़रों रुपये की जागीरें और तोहफ़े बाँटे गये। मगर डाकखाने के बाबू सुखलाल को जिसने रियासत की सेवा में बाल सफ़ेद किये थे, चाँदी का एक तमग़ा मिला। एक डाकिये अथवा अदालत के प्यादे को जो नौ रुपया महीना में गुज़ारा करता है कुछ भी नहीं मिला। उसकी सेवा तक को किसी ने स्वीकार नहीं किया? प्रशंसा का शब्द तक भी नहीं कहा गया। और, बेचारी तारो को भी क्या मिला? चन्द घँटे के लिये क़ैद के बँधन ढीले हुए, वह खुली हवा में साँस ले सकी। नीले विशाल आकाश में सारसों को उड़ते देख सकी। लेकिन......लेकिन उसे श्रवण कहीं नज़र न आया। बल्कि श्रवण के बारे में उसने जो कल्पित धारणा बना रखी थी वह भी निराधार सिद्ध हुई। वह जो सुखप्रद स्वप्न देख रही थी अचानक टूट गया। और, स्वप्न टूटने की प्रतिक्रिया कितनी विषाद पूर्ण और दुखमय थी! उसने जिस स्वप्न को देखा था वह कितना फीका और नीरस था! कितना भयानक और कितना डरावना! भयानक और डरावना, वह सोचती रही और

स्वप्न अधिक स्पष्ट होता गया। उसे भी श्रवण से कब मुहब्बत थी ? वह तो महज मजबूरी में उसे याद कर लेती थी।

श्रवण का काल्पनिक प्रेम उसके जीवन का आधार मात्र था। इस आधार की धुरी पर उसका स्त्रीत्व घूम रहा था। वह हीर थी, पीड़ित हीर—जिसे उसकी इच्छा के विरुद्ध अनचाहे मर्द से व्याह दिया गया था। और उसका राँझा उसके लिये भटकता फिरता था। अगर उसे मालूम हो जाता कि श्रवण ने सचमुच गाँव छोड़ दिया है, और वह उसके कारण शहर में आ कर पल्टन में भर्ती हुआ है तो वह उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसके राँझे ने तख्तहज़ारा* नहीं छोड़ा। उसका राँझा जोगी नहीं बना फिर वही क्यों उसके लिये घुल-घुलकर मरती रहे ? जो मेहींवाल अपनी जाँघ का मास नहीं खिला सकता उसके लिये सोहनी क्यों कच्चे घड़े पर तैरना क़बूल करे ? वह श्रवण पर झुँझलाती अपने आप पर झुँझलाती। वह क्यों उसे प्यासी निगाहों से देखा करता था ? क्यों व्यर्थ का प्रेम जताता था ? और, वह खुद भी क्यों उस पर मुस्कान न्यौछावर करती रही ? दिखावे की मुहब्बत पर भरोसा क्या ? भरोसा ! कब किया था भरोसा उसने श्रवण की मुहब्बत पर ? वह तो रानी बन कर फूली नहीं समाती थी। वह हीर कब बनी थी कि श्रवण उसके लिये राँझा बनता ?

जिन्दगी निराधार हो जाय, मंज़िल अदृश्य हो जाय तो जीने

---

* राँझा का गाँव।

का मोह भी उठ जाता है। शोला बुझ जाता है। शोला बुझ जाय तो राख रह जाती है; और राख वातावरण से विद्रोह नहीं करती। तारो अब नई साड़ी पहन कर खुश होती। आभूषण शरीर पर भले लगते। वह दिन भर मैना से खेलती। उसे चुप देख कर मन उदास नहीं होता था; और उसे फड़फड़ाते देखना किसी प्रेरणा और उत्साह का हेतु नहीं बनता था। अगर मैना दिन में दस बार "माही आया", "माही आया" चिल्लाती तो भी तारो के दिल में एक बार भी ठेस न उठती। शरीर में तनिक भी रोमाँच उत्पन्न न होता। वे एक पक्षी के शब्द थे, कृत्रिम और भावना-रिक्त। वह उन्हें समझ नहीं सकता। बोलने का आदी है और यों ही बोलता रहता है। अब अगर तारो की नज़र राजा की तसवीर पर जा पड़ती तो वह उसे भी देखती ही रहती, यह तसवीर बुरी नहीं थी। कारण, उसे राजा से घृणा नहीं थी। उसे किसी से भी घृणा नहीं थी। घृणा न प्रेम। वह भावशून्य थी। शोला बुझ चुक था। राख बाक़ी रह गई थी।

फागुन के दिन थे। हौले हौले होली आ गई। राजा हर साल होली खेला करता था और होली खेलने के बाद पहाड़ पर चला जाता था। छः सात महीने वहीं व्यतीत करता था। उस दिन सब रानियाँ इन्द्र बाग़ में जमा थीं। राजा ने उन्हे होली खेलने के लिये बुलाया था। हमेशा उस दिन खूब रंग और गुलाल उड़ता था। हँसी और दिल्लगी रहती थी। सबको खुल खेलने का मौका मिलता था। दो चार वर्ष पहले जब राजा के रक्त में गर्मी थी तो होली

और अधिक उत्साह से खेली जाती थी। भाँति भाँति के खेल तमाशे होते थे। जो रानियाँ उनमें विशेष भाग लेती थीं वे राजा के मन को अधिक लुभाती थीं और वह उन्हें अपने साथ पहाड़ पर ले जाता। पहाड़ पर जाने का मोह रानियों को अधिक रहता था। क्योंकि पहाड़ उनके लिये न केवल सैर और मनोरंजन का साधन जुटाते थे वल्कि आजादी के प्रतीक थे; और उनकी आत्मा आजादी के लिये तरसा करती थी। इन दिनों रानियों के मन में पहाड़ जाने को अभिलाषा जाग उठती थी। वर्षा ऋतु में जमीन के अन्दर सूखी जड़ें भी हरी हो जाती हैं। यद्यपि दो चार साल से होली के उत्सव पर किसी को साथ चलने के लिये नहीं चुना गया था। पर राजा की तबियत का क्या ठिकाना? न जाने कब बदल जाये और वह कब इस रिवाज को फिर चालू कर दे!

तारो भी रानियों के हजूम में शामिल थी। कह नहीं सकते कि उसके मन में भी पहाड़ पर जाने की अभिलाषा थी अथवा नहीं क्योंकि उसके चेहरे पर कोई भाव अंकित नहीं थी। आँखों में असीम शून्य भरा था। वह भाव हीन मालूम होती थी, काठ की चलती फिरती गुड़िया सी।

इन्द्र बाग़ शहर से मील भर बाहर दक्षिण की ओर स्थित था। राजा धर्मपाल सिंह के परदादा प्रणपाल सिंह ने यह बाग़ लगवाया था। इसमें भाँति भाँति के फूल खिलते थे और हर मौसम के अनुसार फल लगते थे। लेकिन राजा को न फूलों

से दिलचस्पी थी और न फूलों से। उसे वे फव्वारे पसन्द थे जिन पर बिल्लौरी पत्थर की दूध धुली मूर्तियाँ बनी थीं—नग्न स्त्रियों की मूर्तियाँ, जिनके स्तन उभरे हुये थे और आँखों में चढ़ते यौवन की मस्ती थी। इसी तरुणाई को पत्थर में ढाला गया था। भावनाओं को साकार रूप देना ही कला है। राजा कला का पारखी था। इन मूर्तियों को उत्सुकता और कौतूहल से देखा करता था। उस अंधे क्यूपिड को शौक से देखता था जो इन मूर्तियों के बीच में धनुष बाण लिये खड़ा था और भोले दिलों को घायल कर रहा था।

बाग़ के दक्षिण पूर्वी कोने में एक विशाल भवन बना था। उसे परी महल कहते थे। राजा जब शहर में आता तो इसी महल में रहता था। क्योंकि उसे किसी ज्योतिषी ने बता रखा था कि जिस दिन तुम शहर के अन्दर रात व्यतीत करोगे उसी दिन तुम्हारा राज्य समाप्त हो जायगा। राजा ज्योतिष में विश्वास करता था। वह राजपाट खोने से डरता था। वह कायर और भीरु बनकर भी राज्य की रक्षा करना चाहता था। क्योंकि उसे यह राज्य विरासत में मिला था और वह राज्य की रक्षा किये जा रहा था। उसे दूसरे के हाथ में कठपुतली बनकर भी राजा कहलाना पसंद था और वह राजा कहला रहा था। क्योंकि उसका बाप राजा था, उसका दादा राजा था और उसका परदादा राजा था, जो एक डाकू से राजा बना था। उसे अपने डाकू परदादा पर गर्व था। वह तलवार का धनी था और तलवार के बल उसने

यह राज्य स्थापित किया था जिसकी रक्षा अब धर्मपाल सिंह कर रहा था।

होली के अवसर पर इन्द्र बाग़ वृंदावन बन जाता था। रानियाँ आपस में होली खेलतीं थीं। राजा रानियों से होली खेलता था। होली खेलने का प्रबन्ध बड़े समारोह से किया जाता था। महल की विस्तृत चारदीवारी के अन्दर बाईं ओर एक छोटा सा तालाब था जिसे आनंद सरोवर कहते थे, उसके समस्त पानी में रंग घोल दिया जाता था और किनारों पर साबुन मल दी जाती थी। स्फटिक का फ़र्श और उसपर साबुन, फिसलन खूब बढ़ जाती थी। जिस किसी को तालाब के भीतर धकेल दिया जाता उसके लिये बाहर निकलना कठिन था। भीगे हुए कपड़े, रंगा हुआ चेहरा और बाहर निकलने की असफल चेष्टा, खूब हँसी उड़ती। चारों तरफ़ से गुलाल बरसता। चारों तरफ सब्ज़, सुर्ख़ और उन्नाबी अबीर और गुलाल टिन के टिन भरे रखे रहते थे।

रानियाँ होली खेलने आई थीं। तालाब में रंग घुला था। गुलाल के टिन भरे पड़े थे। वे देख रही थीं और सोच रही थीं। सोच रही थीं और देख रही थीं। अपने भीतर कौतूहल महसूस कर रही थीं। शरीर पर चींटियाँ सी रेंग रही थीं अभी राजा आएगा गोपियों से होली खेलेगा। उनके कपड़े भींग जायेंगे। भीगे हुए कपड़े शरीर से चिपक जायेंगे। भीगे और चिपके हुए कपड़ों का स्पर्श। हृदय में कोई वस्तु उभरती हुई सी महसूस होती थी।

लेकिन होली कब खेली जायेगी? राजा अभी तक क्यों नहीं

आया ? अगर उसने देर की तो रानियाँ उससे रूठ जायेंगी। नहीं, वे उससे रूठेगीं नहीं क्योंकि वे जानती हैं कि राजा उन्हें कभी नहीं मनायेगा। वे राजा से कभी नहीं रूठतीं। वैसे जब से आई हैं तब से रूठी हुई हैं। राजा ने उन्हें कभी नहीं मनाया। और, वे रूठने मनाने यहाँ आई भी नहीं। वे तो होली खेलने आई हैं। राजा का इन्तजार कर रही हैं। राजा से डर रही हैं। वे चुपचाप बैठीं हैं। साधु की समाधि धारण किये हैं। अगर राजा अचानक आ जाय और उन्हें वैसी मुद्रा में देख ले तो क्या हो ? वे डर रहीं थीं और राजा का इन्तजार कर रही थीं।

राजा तो नहीं सावित्री आगई। वह क्या आई वातावरण में बिजली सी कौंद गई। एक सिरे से दूसरे सिरे तक जिन्दगी की लहर दौड़ गई। उसने आते ही सीटी बजाई। तमाम रानियाँ उसके गिर्द जमा होगई। वह स्वयं ड्राइवर बनी। एक रानी के हाथ में हरी लाल झंडी थमाकर उसे गार्ड बना दिया। कुछ टिकट बाबू बने। कुछ सिगनेल करने वाले, कुछ खोमचे वाले, कुछ कुली और जो रानियाँ बच गई वे मुसाफ़िर बन गई और रेलगाड़ी का खेल आरम्भ हुआ।

रेलगाड़ी का यह खेल बहुत ही दिलचस्प था। चारदीवारी के भीतर चारों तरफ रेलवे लाइन बनी थी। जिस पर सचमुच की गाड़ी चलती थी। राजा ने एक छोटे पैमाने की गाड़ी विलायत से मंगवाई थी जिसमें सात डिब्बे और एक इंजिन था। वह कोयले और पानी से चलता था। थोड़े थोड़े फासले

पर स्टेशन बने थे। स्टेशन पर टिकट बंटते थे। सिगनेल होता था। गाड़ी ठहरती थी। मुसाफिर उतरते और चढ़ते थे। और प्लेटफ़ार्म पर खोमचे वालों के शोरगुल के कारण कान पड़ी आवाज़ भी सुनाई नहीं देती थी। गार्ड व्हिसिल करता, हरी झंडी दिखाता और इंजन सीटी बजाकर भक्ख भक्ख करता हुआ चल देता था।

इतने दिनों महलों में बंद रहने के बाद बाबू बनना, गार्ड बनना और मुसाफिर बनकर गाड़ी में सवार होना रानियों को बहुत ही भला मालूम होता था। गाड़ी दौड़ती थी तो उनके शरीर भी दौड़ने लगते थे। मनोवेगा की गति तीव्र हो जाती थी। धक्के से महसूस होते थे और उनके भीतर जड़ता की तहें टूटने लगती थीं। अगर सावित्री न आती तो रानियाँ इस खेल से वंचित रह जातीं; क्योंकि वे इंजन चलाने की कला से अपरिचित थीं, क्योंकि उन्हें गाड़ी का खेल नहीं आता था। वे गाड़ी को छू नहीं सकती थीं क्योंकि उन्हें राजा का भय था। लेकिन सावित्री राजा से नहीं डरती, वह आज़ाद है, स्वतंत्र है। मनमानी करती है। उन्हें सावित्री बनने की चाह थी। लेकिन वे नहीं बन सकी थीं। इसलिए उन्हें सावित्री से नफ़रत थी। लेकिन सावित्री को किसी से नफ़रत नहीं थी। वह घृणा और द्वेष से मुक्त थी। वह पवित्र थी। कोई मलीनता और तुच्छता उसे छू नहीं पाती थी; क्योंकि वह प्रत्येक बंधन से मुक्त थी। वह औरत थी।

इस औरत की एक कहानी थी और रियासत के लोग उसके

बारे में इस कहानी से भी अधिक जानते थे। वह एक धनी घर की शिक्षित लड़की थी। कोई आवारा लम्पट नौजवान उसके रूप पर मुग्ध हो गया। सावित्री को इस बात का किंचित ज्ञान नहीं था। वह उसे जानती तक नहीं थी। नौजवान ने किसी न किसी प्रकार अपने आप को आई० सी० एस० सिद्ध किया और सावित्री के माता पिता को धोखा देकर विवाह कर लिया। वह पहले भी विवाहित था, लेकिन पहली पत्नी से सन्तुष्ट नहीं था। उसने पत्नी को छोड़ दिया था। जब सावित्री को मालूम हुआ कि वह अविवाहित नहीं है और वह आई० सी० एस० भी नहीं है तो सावित्री ने उस लम्पट, धूर्त्त, धोखेबाज़ को छोड़ दिया। और, वह एक सोसाइटी गर्ल का जीवन व्यतीत करने लगी। फिर वह एक्ट्रेस बन गई। एक बार राजा धर्मपाल सिंह बम्बई गये हुये थे। उसने एक फ़िल्म की शूटिंग देखी। वहाँ उसकी मुलाक़ात सावित्री से हो गई। वह देखते ही उस पर लट्टू हो गया। यथा अवसर स्नेह-संलाप भी हुआ।

"क्षमा कीजियेगा, अगर मान लें तो एक बात कहूँ ?"

"मैं और आपकी बात........"

"हाँ मेरी एक इच्छा है एक प्रार्थना है।"

"कहिए, आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

"मैं चाहता हूँ कि आप मेरे साथ रहें।"

वह सोचने लगी और कई मिनट तक सोचती रही। वह सोचते हुए और भी भली मालूम होती थी। उसके नयनों का

आकर्षण बढ़ गया था। राजा को भय था कि कहीं वह इनकार न कर दे। वह उसकी प्रजा नहीं थी। यहाँ उसका बलपौरुष नहीं चल सकता था। वह सुन्दर थी। राजा उसे चाहता था। वह फिर नम्रता से बोला, "क्या आपको मेरे साथ रहना स्वीकार है?"

"अच्छा, स्वीकार," सावित्री ने आँखें ऊपर उठाई, "मैं आपके साथ रहूँगी। पर आप वचन दें कि शादी करने को कभी नहीं कहेंगे। मेरी स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का बंधन नहीं लगायेंगे।"

सावित्री अब इन्द्र बाग़ में रहती थी। जहाँ चाहे आ-जा सकती थी। जिससे चाहे मिल सकती थी। राजा उस पर कोई पाबंदी नहीं लगा सकता था। वह जो बात चाहे राजा से मनवा सकती थी। सिर्फ़ राज्य और प्राण नहीं माँग सकती थी। राजा को प्राण राज्य से प्यारे थे और राज्य प्राणों से प्यारा था। इन दोनों के बाद सावित्री प्यारी थी। वह जो बात चाहे करवा सकती थी। उसने कई निरपराध क़ैदी रिहा करवाये थे। कई निर्दोष पीड़ितों की सहायता की थी। लेकिन रियासत में इतने क़ैदी थे, निरपराध और निर्दोष। वह सब को कैसे रिहा करवा सकती थी? रियासत के सब लोग पीड़ित और शोषित थे, वह सब की सहायता किस प्रकार कर सकती थी? किसी संस्था और समाज की त्रुटियों को दूर करना किसी एक व्यक्ति के लिए सम्भव भी तो नहीं।

गाड़ी पूरी रफ़्तार पर चल रही थी। गाड़ी में रानियाँ बैठीं थीं। उनके शरीर गतिमान थे। तारो भी गाड़ी में बैठी थी।

उसका शरीर भी हरकत में था। वह अपने भीतर हलचल महसूस कर रही थी। जड़ता टूट रही थी। चेतना सजग हो रही थी। आत्मा में आतुरता बढ़ रही थी। इंजन की सीटियाँ उसके भीतर गूंज रहीं थीं। सीटियाँ गूँजती रहीं। धुन्ध बढ़ता रहा।

गाड़ी ने एक चक्कर काटा और जहाँ से रवाना हुई थी वहीं आकर ठहर गई। मुसाफ़िर गाड़ी से उतर आये। तारो भी उतर आई। उसका सिर घूम रहा था, प्लैटफार्म घूम रहा था। स्टेशन, रानियाँ, बाग़—हर एक चीज़ घूम रही थी, क्योंकि तारो का दिमाग़ घूम रहा था। बचपने में वह सखियों के संग गाँव में घूमा करती थी, विशेष कर बरसात के मौसम में जब काले-काले बादल झूम-झूम कर आते थे। वह वर्षा के आगमन की ख़ुशी में नाचा करती थी, घूमा करती थी। जब घूम-घूम कर, चक्कर खाकर और थक कर बैठ जाती थी तो जमीन घूमा करती थी। सखियाँ घूमा करती थीं। हर एक चीज़ घूमा करती थी। आज उसने गाड़ी में बैठ कर चक्कर काटा था। बेशुमार चक्कर काटे थे। दिमाग़ न जाने कहाँ कहाँ घूम रहा था। उसकी अतृप्त कामना घूमती रही, भटक रही थी। गाड़ी का चक्कर ख़त्म हो गया मगर दिमाग़ अभी तक घूम रहा था। प्लैट फ़ार्म घूम रहा था। हर एक चीज़ घूम रही थी।

दिमाग़ शान्त होता गया। हर एक चीज़ शान्त होती गई। शान्त, शान्त, आखिर सब कुछ शान्त हो गया। तूफ़ान थम गया।

सावित्री प्लेटफ़ार्म पर घूम रही थी। रानियों से मिल रही थी। हँस हँस कर बातें कर रही थी। उनसे परिचय बढ़ा रही थी। वह खुद हँस रही थी और उन्हें हँसा रही थी। उसकी चाल में मस्ती, नयनों में नृत्य और ओंठों पर मुस्कराहट थी। उनका अंगअंग सजीव था और यह सजीवता वातावरण को सजीव किये देती थी।

तारो चुपचाप बैठी थी। उसके भीतर भयानक शून्य फैला था। सीटियों की गूँज थम गई थी। चेतना मूर्छित हो चली थी। आत्मा की पीड़ा शिथिल और ठोस हो गई थी।

"मालूम होता है तुम नई हो?" सावित्री तारो के सामने खड़ी पूछ रही थी। उसे ये शब्द एक दम अजीब लगे। दुख सहते सहते साल भर हो गया। वह नई कहाँ है? दुख क्या आदमी को नया रहने देता है? दुख तो नयेपन की भावना तक को कुचल देता है। तारो की समझ में कुछ न आया। वह समझ नहीं सकी कि क्या जवाब दे। वह एकटक सावित्री की ओर देखती रही, उसकी बड़ी बड़ी आँखों में झाँकती रही और इन आँखों से मधुर और सजीव रस उसकी आत्मा में प्रवेश होता रहा।

"कोई बात नहीं, उदास क्यों हो?" उसने तारो को छाती से लगा लिया। उसका सिर कंधे पर रखकर प्यार करते और सहलाते हुए कहा, "जिंदगी बाज़ी ही तो है। आदमी हारता भी हो तब भी हिम्मत से खेलता जाय।"

तारो चौंकी। सावित्री आगे बढ़ चुकी थी। लेकिन उसके

भीतर वह गहरी वेदना भर गई थी। आत्मा में सुलगती चिनगारी छोड़ गई थी। उसकी ठोस पीड़ा उसके आँच से पिघल रही थी, अंग अंग में समा रही थी। बेचैनी बढ़ रही थी। वह दूर जाती हुई, सावित्री को देख रही थी। देख सावित्री को रही थी लेकिन दीख पड़ता था उसकी आँखों का नृत्य और होठों की मुस्कराहट और उसके कानों में ये शब्द गूँज रहे थे— "ज़िंदगी बाज़ी ही तो है। आदमी हारता भी हो तब भी हिम्मत से खेलता जाये।"

एक चिड़िया चूँ चूँ करती, फड़फड़ाती तारो के शरीर को स्पर्श करती हुई गुज़र गई। वह उसकी ओर देखने लगी और देखती ही रही। उसे अपनी मैना का ध्यान आया जो पिंजड़े में दुबकी और सुकड़ी हुई बैठी होगी।

(८)

सावित्री रानियों की स्थिति को खूब समझती थी। वह उन से मिल जुल कर उनके दुख दर्द का अनुमान लगाना चाहती थी। वह देख रही थी कि हर एक चेहरे पर उदासी है, हर एक आँख में ग़म है और हर एक होंठ पर विवशता और अभाव की ख़ामोश शिकायत है। सिर्फ़ पाँच सात रानियों में ज़िंदगी के कुछ लक्षण दिखाई पड़ते हैं। मगर वे भी उन्हें छिपा कर रखती हैं। न जाने बेचारियों ने किन यत्नों से जीवन ज्योति जगा रखी है। वर्ना महलों के सर्द वातावरण में हर एक चिनगारी बुझ जाती

है। साल भर में बहुत कम अवसर ख़ुशी—ऊपरी ख़ुशी-मनाने के मिलते थे। ऐसे अवसरों के क्षण भी राजा की इच्छानुसार सीमित कर दिये जाते थे अथवा सर्वथा निराशा में बदल दिये जाते थे। वे आज भी ख़ुशी मनाने आई थीं। लेकिन उनको ख़ुशी के क्षण कम हो रहे थे क्योंकि अभी तक राजा नहीं आया था। सौभाग्य से सावित्री आगई। वह राजा की पाबंद नहीं थी, राजा से डरती नहीं थी। उसने रेलगाड़ी का खेल शुरू कर दिया। राजा फिर भी नहीं आया। उसने होली का खेल भी शुरू कर दिया। रंग था, गुलाल था और दिलों में खेलने की उमंग थी। फिर खेल शुरू क्यों न हो? रानियाँ झिझकती और डरती थीं। उन्हें डर लगता था कि खेल के बीच में राजा आयेगा तो क्या कहेगा? लेकिन सावित्री की उत्साहजनक मुस्कान ने उनके अन्दर हिम्मत भर दी और खेल शुरू हो गया।

गुलाल उड़ रहा था। पिचकारियाँ छूट रही थीं। सररर सररर रंग निकलता था। कपड़े भीगे जाते थे, शरीर से चिपके जाते थे। हृदयों में कुछ जज्ब हो रहा था। शायद वह भीगे कपड़ों की सीलन थी। शायद कुछ और था। कुछ न कुछ था अवश्य जो जज्ब होता रहा। मन विकसित हो उठा और वातावरण में क़हक़हे गूँजने लगे। अगर कोई रानी सावित्री पर रंग डालती तो वह मुस्करा कर और डालने का निमन्त्रण देती थी, उत्साह बढ़ाती थी। हृदय धुलते गये, भय निकलता गया और क़हक़हे बुलंद होते गये। होली स्वच्छंदता से खेली जा रही थी और

होलियाँ गाई जा रही थीं :—

"वृदाँबन की कुंज गलिन में कैसी खेली होली।"

सावित्री मधुर और उच्च स्वर में गाती थी और रानियाँ स्वर उठाती थीं और फिर पिचकारियाँ छूटती थीं सररररसरर! कपड़े भीगे जाते और शरीर से चिपके जाते थे। हृदयों में कुछ जज्ब हो रहा था उमंगे पनप रहीं थी।

न मारो पिचकारी मोहन, भीग गई मोरी चोली।"

पिचकारियाँ छूटतीं और चोलियाँ भीगतीं लेकिन मोहन अथवा राजा वहाँ मौजूद नहीं था। न हो, रानियाँ भी तो वहाँ मौजूद नहीं थीं।

उस समय वे गोपियाँ बनी थीं। केवल औरतें थी। औरत का हृदय जिस मोहन से सम्बन्धित था वह वहाँ उपस्थित था। उन पर रंग की पिचकारियाँ छोड़ रहा था। हृदय में रोमांच भर रहा था, और वे स्नेहयुक्त शिकायत कर रही थीं :—

"भीग गई यह साड़ी सारी, भीग गई मोरी चोली।"

मोहन शायद दो गुत्तों वाली सावित्री का भेस भरकर आया था और वह गोपियों से होली खेल रहा था। वृन्दाबन की गलियों में गुलाल उड़ रहा था। मोहन की मौजूदगी का एहसास स्पष्ट होता जा रहा था। मोहन गोपियों के हृदय-प्रदेश में वास करता है। वह नारी के सपनों में रहता है। वह कोई रूप धारण नहीं करता। वह बहुत प्यारा है, बहुत चंचल है। साँवला, सलोना!

"रूठ गई मैं तुमसे जाओ करो न जोरा जोरी।"

एकाएक आवाज़ बंद हो गई, पिचकारियाँ रुक गईं और गुलाल मुट्ठियों में भरा रह गया। गोपियाँ अचल और चकित थीं। सामने मोहन खड़ा था। लेकिन वह मोहन नहीं जिससे वे जोरा जोरी की शिकायत कर रहीं थीं, जिससे वे रूठना चाहती थीं; और जिससे वे मनाये जाने की आशा रखती थीं। वह राजा था और वे रानियाँ थीं, डरी हुई और सहमी हुई। वहाँ न वृन्दावन था, न गोपियाँ थीं। यह होली भी नहीं थी होली का स्वाँग था, मज़ाक था। राजा की मौजूदगी ने नारी के कल्पित मोहन की हत्या कर दी थी। पतिव्रता स्त्री के लिये किसी और मोहन की कल्पना करना पाप है इसलिये रानियाँ अपराधी थीं और वे सहमी हुई थीं।

पर एक नारी थी जिसका मोहन अब भी जीवित था। वह रानी नहीं थी। राजा की ग़ुलाम नहीं थी। वह केवल नारी थी। उसका मोहन राजा से बलवान था। सावित्री आगे बढ़ी, राजा के समीप आकर कंधे हिलाये और मुस्करा कर कहा, "देखा आपने, कैसी धूम मची है?"

"लेकिन हमारे आने से पहले ही।"

भयभीत रानियाँ और भी सहम गईं। राजा नाराज़ था। मोहन ख़फ़ा था। अब क़यामत टूटेगी, प्रलय आयेगी। पर सावित्री निर्भय राजा के सामने खड़ी थी। वह रंग से तर थी। उसकी सारी साड़ी भीग गई थी। जम्पर भीग कर सीने से चिपक गया था। दोनों ज़ुल्फ़ें कानों के पास से होती हुई

आगे लटक रही थीं, छातियों की गोलाइयों को छू रही थीं। उनमें लाल हरे रंग की धारियाँ बनी थीं। जैसे चितकबरे साँप हों लहराते और फुफकारते। सावित्री के चेहरे पर रंग पुता था। लेकिन आँखें—आँखों में वही मुस्कराहट थी, चंचलता थी, जादू था और स्वच्छन्दता थी। उसने लम्बी लम्बी पलकों को ऊपर उठाया और स्याह सफ़ेद पुतलियों को घुमाकर कहा, "ओहो आप नाराज़ हो गये। आखिर पहले और पीछे में अन्तर क्या है?"

राजा ने आँखें उठाईं। सवित्री ने झट अपनी आँखें उनमें डालदी और पिचकारी छोड़दी। राजा तर बतर हो गया। सावित्री ने अपने और फिर उसके भीगे हुए कपड़ों की ओर संकेत करके कहा, 'अब बताइए, पहले और पीछे में अन्तर क्या है?"

सचमुच कोई अन्तर नहीं था। सावित्री की आँखों में सनातनता भरी थी। उनमें आगे और पीछे का अन्तर मिट गया था। राजा मुस्करा दिया। कंकाल मुस्करा उठा। आँखो की मादकता ने उसमें जीवन भर दिया थो।

सावित्री ने दौड़ कर पिचकारी फिर भरली और राजा पर छोड़ने के लिये तैयार हो बोली, "आदमी आगे पीछे की नहीं सोचता रिवाज और रीति का जाला अपने आस पास बुनकर मकड़ी की भाँति उसमें फँसे रहना पसंद करता है।"

राजा ने भी अपनी पिचकारी ऊपर उठाई। सावित्री की यह

फिलासफी वह समझ नहीं सका था। उसने शायद सावित्री के ये शब्द सुने ही न थे। वह बहरा था। वह सिर्फ़ उसकी आँखें देख सकता था। लेकिन आँखों पर पलकों का पर्दा पड़ गया था। जादू का खेल बंद हो गया था और उधार दिया हुआ जीवन कंकाल से लौटा लिया गया था।

सावित्री को कंकाल पर—निर्जीव वस्तु पर, अपनी पिचकारी छोड़ते हिचकिचाहट मालूम हुई। वह हिरनी की तरह चौकड़ी भर कर राजा के सामने से हट गई और अपनी पिचकारी रानियों पर छोड़ दी। राजा की पिचकारी का रंग भी रानियों पर पड़ा और होली का खेल फिर शुरू हो गया।

गुलाल अबीर उड़ रहा था। पिचकारियाँ छूट रही थीं। राजा रानियों से होली खेल रहा था क्योंकि कृष्ण ने गोपियों से होली खेली थी। उसके दादा वीरपाल सिंह और उसके पिता पृथ्वीपाल ने रानियों से होली खेली थी। होली आदि काल से खेली गई है, होली अब भी खेली जारही थी। होली आगे भी खेली जायेगी। होली मर्द और औरत के प्रेम सम्बन्ध को निर्धारित करती है। पर यहाँ जो होली खेली जारही थी, वह त्यौहार बन चुकी थी। रिवाज मात्र थी। राजा वही त्यौहार मना रहा था। रस्म पीट रहा था। वह अपने पूर्वजों—अपने बाप दादा—द्वारा बताये मार्ग पर चल रहा था।

कुछ पुराने रेखा चिन्ह मिट भी रहे थे। राजा धर्मपाल सिंह रानियों को सिर्फ़ होली खेलने के लिए बाग़ में बुलाता था।

परन्तु उसका दादा वीरपाल सिंह और उसका पिता पृथ्वीपालसिंह जब चाहते थे रानियों को बाग़ में बुला लेते थे। इस इमारत के परली तरफ़ जो झील सा तालाब है, जिस पर लक्ष्मण झूला भी बना है उसमें राजा और रानियाँ नंगे नहाया करते थे। नंगे नाचा करते थे। लेकिन अब यह रिवाज मिट चुका था। राजा अपनी रानियों के साथ नंगा कभी नहीं नाचता था। समय ने नग्नता को ढांप लिया था। दुनिया सभ्य हो चली थी। राजा को भी शायद सभ्य होना पड़ा था।

कुछ साल पहले की बात है। राजा शहर की गलियों में घूम कर प्रजा के साथ होली खेला करता था। बाज़ारों में अहलकार होते थे। अफ़सर और सैनिक होते थे। शहर के प्रतिष्ठित और साधारण लोग होते थे। वे भिन्न भिन्न स्वांग भरकर निकलते थे। पिचकारियाँ छूटती थीं। गुलाल और अबीर उड़ता था। राजा हाथी पर सवार आता था। उसके हौदे में इश्तहार फेंकने वाले बमों की तरह के लाख के सैंकड़ों हज़ारों गोले रखे रहते थे। उनमें गुलाल भरा होता था। हाथी बढ़ता जाता था और राजा गुलाल के गोले लोगों पर फेंकता जाता था। छतों पर से राजा पर भी रंग और गुलाल बरसता था। उस दिन ग़रीब घरों के बच्चे सैंकड़ों रुपये की लाख और गुलाल जमा कर लेते थे। लेकिन अब यह सिलसिला बन्द हो चुका था। राजा रानियों में अहलकार अपने घरों में और फ़ौज के सिपाही पलटन में होली खेलते थे। राजा का सम्बन्ध प्रजा से कट चुका था। सामन्तशाही का युग

बीत चुका था। राजा कंकाल थे, प्रजा विद्रोही। संघर्ष छिड़ा था। पुराने रेखा-चिन्ह मिट रहे थे। अगर उनके स्थान पर नई रेखायें उभर आतीं तो राजा को कंकाल बनाने के बजाये उसकी लाश दफ़ना दी जाती।

समय आशावादी है। वह कह रहा था:—नई रेखायें जरूर उभरेंगी।

होली उसी तरह खेली जा रही थी जिस तरह हर साल खेली जाती थी। रानियाँ राजा के इशारों पर नाच रही थीं। वह किसी रानी के गालों पर गुलाल मल देता तो वह मुस्करा देती थी। राजा किसी पर पिचकारी छोड़ता तो वह छाती तान देती थी। कठपुतली का नाच हो रहा था। गुलाल उड़ रहा था। रंग बरस रहा था और क़हक़हे लगाये जा रहे थे। लेकिन इस रंग और गुलाल में उल्लास की रंगत नहीं थी। ये क़हक़हे सजीव और सप्राण नहीं थे। रानियाँ निरानंद खेल की आदी हो चुकी थीं क्योंकि वे वर्षों से इसी प्रकार खेलती आई थीं, क्योंकि उन्होंने इस खेल से झूठी आशायें लगा रखी थीं। लेकिन तारो के लिये यह खेल नया था। वह इसकी अभ्यस्त नहीं थी। उसे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसने गुलाल मलने के लिये राजा को अपने गाल पेश नहीं किये। राजा की पिचकारी से भीगने के लिए उसके मन में अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई। वह और सावित्री एक ओर खड़ी थीं और राजा रानियों को खेलते देख रही थीं। यह खेल कठपुतलियों के तमाशे से अधिक दिलचस्प था।

"हमारे गाँव में तो इस प्रकार होली नहीं खेली जाती," तारो ने सावित्री से कहा।

"हाँ, गाँव में बनावट नहीं होती।" सावित्री ने जवाब दिया।

सब लोग हँसते खेलते उनके क़रीब आगये। राजा की दृष्टि सावित्री पर पड़ी। उसने अपनी पिचकारी उधर कर दी—"अच्छा आप यहाँ खड़ी तमाशा देख रही हैं।" राजा ने पिचकारी छोड़ दी। सावित्री लपक कर तारो की ओट में हो गई। सररररसररर रंग की धार तारो की छाती पर गिरने लगी। इस रंग का पानी बर्फ से भी अधिक ठंढा था। तारो के सीने का ख़ून जम गया। शायद वह मूर्छित हो जाती। पर राजा ने आधा ही रंग डाला। उसने फिर आधा सावित्री पर डालने की कोशिश की। वह धरती पर जा गिरा।

उसके बाद धींगाँमुश्ती शुरू हुई। एक दूसरे को तालाब में धकेला जाने लगा। सावित्री ने तारो को भी धकेल दिया। वह छपाक से तालाब में गिरी और सारा शरीर काँपने लगा। उसने बाहर निकलने की कोशिश की लेकिन किनारे पर फिसलन थी तालाब में सूखे पत्ते की तरह जा गिरी। वह मूर्छित हो गई थी। उसका ख़ून जम चुका था।

प्रेरणा

[१]

तारो सावित्री के कमरे में पड़ी थी। कुछ घंटों तक तो उसे होश ही नहीं आया। लेकिन जब होश आया तब भी उसकी अवस्था विक्षिप्त ही थी। वह फटी फटी आँखों से इधर उधर देख रही थी। उद्देश्यरहित दृष्टि शून्य में घूम रही थी। उसके भीतर शून्य था। बाहर शून्य था। शून्य फैलता जा रहा था; और वह देख रही। यह देखना ख़त्म होता ही न था। तारो की आँखों में कुछ ऐसी भयानकता थी जिसे देख कर पास बैठी नैना डर गयी। तारो के हृदय की समस्त घृणा प्रतिकार और विवशता उसकी आँखों में सिमट आई थी। डाक्टर की दवा ने मूर्छा को तो दूर कर दिया था मगर, उसके नारी हृदय पर जो चोट लगी थी उसकी जलन को दूर करना डाक्टर के बस का रोग नहीं था।

डाक्टर चार घंटे बाद फिर आया और एक दूसरा नुसखा तजवीज़ करके चला गया। दवा पीने के कुछ देर बाद तारो

का मस्तिष्क ठीक हुआ। सोचने की शक्ति लौटी। अचेत भावना सचेत हुई। थकन के मारे उसका शरीर टूट रहा था और आत्मा का कण कण विषम वेदना से जल रहा था। वह जब से आई थी अपने ही रक्त की उष्णता में जलती रही थी। उसने आज तक घृणा और ईर्ष्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा था। उसके मन में विष भरा था। गाँव में जब वह अपनी सहेलियों के साथ रहती थी तो उसने कभी किसी से ईर्ष्या नहीं की थी। उसके मन में कभी प्रतिस्पर्द्धा की जलन उत्पन्न नहीं हुई थी। वह सखियों में सबसे सुन्दर थी। गाँव के लड़के उसी की ओर कनखियों से देखा करते थे। सब सखियाँ उसकी अतुल सुन्दरता पाने की कामना करती थीं।

लेकिन अब यह अपना जीवन अपनी सब सखियों से बदल लेना चाहती थी। उसे अपनी विवाहित सखियों की बातें याद आती थीं। उन्हें अपने पतियों पर कितना मान था। वे उन्हें कितना प्यार करते थे। लेकिन वह जो उन सब से सुंदर थी—वह एक ऐसे मर्द से ब्याही गई थी जिसके बारे में वह यह भी नहीं समझ सकती कि उसकी कौन सी बात पर मान करे। वह उत्सव करता है, वेश्या नचाता है, उसको प्यार करता है। मगर उसकी अपनी ब्याहता रानियाँ नरक में पड़ीं सिसक सिसक कर ज़िंदगी के दिन बिता रही हैं। एक राजा के नाते वह किसी की दृष्टि में पर्वत हो सकता है पर एक पति के नाते वह तारो की दृष्टि में राई से भी तुच्छ था; तुच्छ और हीन! राजा

का विचार उसके मन को घृणा, क्षोभ और ग्लानि से भर देता था।

तारो और उसमें कोई समता नहीं थी। वह एक देहात में उत्पन्न हुई थी और किसी देहाती लड़के की कल्पना उसके स्वप्नों को मधुर बनाती रही। क्या मालूम था कि उसकी जीवन-धारा एक बारगी विपरीत दिशा में बह निकलेगी।

उसके वश की बात होती तो वह ब्याह से साफ़ इनकार कर देती। ख़ैर, इनकार न कर सकी तो न सही। उसे यह तो कभी आशा नहीं थी कि उसके साथ निर्दयता का व्यवहार किया जायेगा, यों उपेक्षा होगी। उसे राजा के साथ होली खेलने की लालसा न थी। वह आप ही आप उसके क़रीब आ गया था। फिर भी उसने तारो की परवाह नहीं की। जो रङ्ग वह सावित्री पर डालने चला था वह तारो पर पड़ गया और वह भी सिर्फ़ आधा। राजा ने बीच ही में रोक लिया।

रङ्ग का एक एक बिन्दु छाती में उतर कर नासूर बन गया। उसके भीतर की देहाती रमणी के लिये यह अपमान असह्य था। जिस राजा से वह घृणा करती थी, जो राजा उसे ज़बरदस्ती ब्याह कर लाया था, जो राजा उम्र में उससे तीन गुना बड़ा था, वह अगर उस पर रंग की पिचकारी भी न छोड़े तो उसका ख़ून सर्द होकर क्यों न जम जाय ? उसका दिल क्यों न जल भुन कर ख़ाक़ हो जाय।

जब पौष का महीना आता था तो वह सखियों के संग नहाया

करती थी। उसे कभी ज़ुक़ाम तक न हुआ। शरीर चाहे सर्दी के मारे ठिठुर जाय लेकिन हृदय इतना विस्तृत हो जाता था कि समस्त संसार उस में समा सकता था। इस नहाने से सोहाग और भविष्य की उम्मीदें सम्बन्धित थीं। महीना भर नहाने के बाद हर एक लड़की एक नन्हा सा बेड़ा तैयार करती थी। उस बेड़े पर जलता हुआ दिया रख कर एक किनारे से तालाब में धकेल देत थी। हर एक रमणी अपने दिये को धड़कते हुये दिल से पानी की सतह पर तैरते हुये देखती थी और मन में डरती थी कि कहीं हवा दिये को बुझा न दे, कहीं बेड़ा बीच में डूब न जाय। जिसका दिया जलता हुआ दूसरे किनारे पर पहुँच जाता था उसकी प्रसन्नता का पार न रहता था। उसके भविष्य में हज़ारों लाखों दिये जगमगा उठते थे।

तारा ने उन्हें अनेक बार जगमगाते देखा था। लेकिन अब वे सब एक साथ बुझ गये थे। उनके धुँये से दम घुटा जा रहा था। अँधेरे के कारण मार्ग सुझाई नहीं देता था।

तारो ने तमाम रात तड़प तड़प कर गुज़ारी। दिल में टीस उठती थी। भीतर के नासूर दुख रहे थे, रिस रहे थे। सावित्री पास बैठी सान्त्वना दे रही थी। लेकिन उसे यह सांत्वना अच्छी नहीं लगती थी ावित्री की सकरुण निगाहें उसके शरीर में काँटों की तरह चुभ रही थीं। वह एकान्त चाहती थी, अकेले में तड़पना और रोना चाहती थी।

सवेरे डाक्टर आया तो सावित्री दूसरे कमरे में सो रही

थी। तारो के लाख कहने पर भी वहाँ से न हटी। तमाम रात आँखों में गुजारी। घंटा डेढ़ घंटा हुआ, थक कर आराम करने चली गई थी। डाक्टर ने हालत मालूम की तो नैना बोली "तमाम रात तड़पकर गुजारी है। एक मिनट भी आँख नहीं लगी, डाक्टर साहब।"

डाक्टर ने टेम्परेचर लिया। तारो को हल्का हल्का ज्वर था, जिसका कारण ज़ुकाम मालूम होता था। डाक्टर ने सहज ही कहा, "ठंडे शरीर में हवा लग गई है, जुकाम का ज़ोर है। दो तीन दिन में आराम हो जायेगा। थकावट और परेशानी कुछ अधिक दिखाई पड़ती है, शायद इसीलिये नींद नहीं आई।" फिर तारो से पूछा, "आपको कोई ख़ास तकलीफ़ तो नहीं है?"

तारो डाक्टर की ओर देख रही थी। वह छरहरा नौजवान था। उसकी ज़ुबान में मिठास थी। तारो का जी चाहता था कि डाक्टर इसी तरह बोलता रहे. वह देखती रहे सुनती रहे। डाक्टर का सवाल सुनकर तारो का हाथ छाती पर जा रहा, "इस जगह बहुत जलन है, जैसे आग लगी हो।"

डाक्टर से स्टेथस्कोप से दिल की हरकत देखी, फफेड़ों की जाँच की और झिझकते झिझकते अपनी मर्दाना उँगलियों से छाती को टटोला।

तारो को इन उँगलियों का स्पर्श बहुत ही सुखप्रद लगा। उसने डाक्टर के हाथ को अपने हाथों से छाती पर अनायास

दबा लिया। उस हाथ के स्पर्श में कितनी शीतलता थी! यह स्पर्श उसके भीतर की जलन को ठंढक पहुँचाता था। स्पान्ज था जो नासूरों में से रसती हुई पीब को चूस रहा था। उसमें मर्द का गरम .खून बह रहा था।

जाँच करने से डाक्टर को कई नई बातों का पता चला। तारो की हालत देखकर उसे आश्चर्य हो रहा था। जिस बीमारी को वह मामूली समझ रहा था दरअसल वह मामूली नहीं थी। देखने को .ज़ुकाम था। लेकिन उसकी तह में भयंकर रोग के लक्षण छिपे थे। जैसे जैसे रोगिनी की भीतरी अवस्था उस पर प्रकट होती थी डाक्टर को घबराहट मालूम हो रही थी और वह उसे अपनी व्यावहारिक गम्भीरता में छिपाने को कोशिश कर रहा था।

नैना व्यथित दृष्टि से रोगिनी और डाक्टर को देख रही थी। वह तारो के कष्ट को डाक्टर से अधिक समझती थी। वह इस रोग के मूल कारण से परिचित थी। इसीलिये तो वह रात तारो की फटी फटी आँखों में घोर विषमता देखकर डर रही थी। अब डाक्टर के चेहरे का बदलता हुआ भाव और कृत्रिम गम्भीरता भी उससे छिपी न रह सकी।

वह बोली, "डाक्टर साहब, ध्यान से देखियेगा। कभी कभी साधारण रोग की जड़ें बहुत गहरी होती हैं।"

"यह ठीक है।" डाक्टर ने दासी की ओर देखा। उसकी आँखों में करुणा भरी थी, उसके चेहरे से अनुभव आर बुद्धिमत्ता

प्रकट हो रही थी। डाक्टर ने जाँच जारी रखते हुये कहा, "हृदय को ठेस लगी है। फेफड़े कमजोर हैं। उन पर सर्दी का असर है। बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। मैं दवा भेजता हूँ। तुम ध्यान रखना कि शरीर पर गर्म कपड़ा रहे।"

डाक्टर के आदेशों का ध्यान रखा जाता था। पूर्ण सावधानी के बावजूद तारो की हालत बिगड़ती ही गई। दो दो लिहाफ़ ओढ़ाये रखने पर भी शरीर की कपकपी दूर नहीं होती थी। दस दिन बीत गये, उसे तनिक होश नहीं। छाती में कठोर पीड़ा और एक सौ चार, एक सौ पाँच डिग्री बुखार रहता था। उसका पीला रंग धीरे धीरे काला पड़ गया। आँखो के चारों ओर गढ़े पड़ गये थे। आग बुझ चुकी थी, उसमें से धुँआ उठ रहा था। थूक में खून के धब्बे थे। नाक तेज़ तेज़ चलती थी। तारो को न्यूमोनिया हो गया था।

मैना दिन रात देख भाल करती। उसे अपने खाने पीने की परवाह नहीं थी। जैसे उसका शरीर उसका अपना नहीं तारो की धरोहर था। एक दासी के लिये इस वृद्धावस्था मे इतनी सेवा कर सकना मुमकिन नहीं था। दास वृत्ति से इस त्याग की कल्पना व्यर्थ थी। यह तो कोई और ही आकर्षण था जो उसे फिरहरी की तरह तारो के चारों तरफ़ घुमाता था, दुखी और चिन्तित रखता था। उसकी जवानी दूसरों की सेवा करते बीती थी। औरत के दिल में माँ बनने की जो उमंग होती है वह उम्र भर व्यापी रही। उसने बेटी का सिर गोद में रखकर कभी

नहीं थपथपाया था। तारो की निरीहता पर उसके मन का समस्त स्नेह उमड़ आया था। उसकी विवशता देखकर उसके भीतर ममता का स्रोत फूट निकला था। तारो के लिये उसके हृदय में पूर्ण सहानुभूति थी।

सावित्री अगर इस बात का ख़याल न रखती कि नैना को सोना है, नैना को अभी भोजन करना है, तो वह भी तारो के साथ ही बीमार पड़ जाती। अगर वह पहली रात खुद सो जाती तो दो तीन बजे उठकर नैना को सुला देती, और खुद तारो की तीमारदारी करती। समय पर दवा पिलाती, शरीर पर कपड़ा ढाँप कर रखती किसी चीज की जरूरत होती तो फ़ौरन मगंवाती। एक सिपाही हर समय पहरे पर मौजूद रहता था। उसे जहाँ भी चाहे भेजा जा सकता था।

नैना को अपनी सेवा सूश्रूषा पर आश्चर्य नहीं था क्योंकि वह समझती थी कि वह दासी है और सेवा के लिये ही उत्पन्न हुई है। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य होता था कि सावित्री एक बीमार प्राणी की इतनी सेवा कर सकती है। उसके मन में इतनी सहानुभूति भरी है। वह तो चरित्रहीन औरत थी। उसने सुख भोगना जीवन का कर्त्तव्य बना रखा था। इसीलिए तो वह राजा की रखैल बनी थी। ऐसी औरत का कौन मान करेगा?

नैना एक तुच्छ दासी ही थी, फिर भी वह सावित्री से घृणा करती थी। मगर उसकी सहानुभूति और संवेदना ने घृणा को दूर कर दिया। जिस तरह शोले की आँच से साँप का विष जल

जाता है। उसी तरह सावित्री की मानवता ने नैना के रुढ़िपरायण दम्भ का नाश कर दिया। वह स्नेह-सिक्त नम्रता से कहती, "सरकार आप क्यों कष्ट उठाती हैं। आप सोवें, मैं बैठी हूँ।

"तुम बूढ़ी हो, तमाम रात बैठ सकती हो और मैं कुछ देर भी नहीं बैठ सकती" ? सावित्री उत्तर देती और मुस्करा कर कहती . "तुम जाओ। अब मैं बैठूँगी। सेवा में कभी कष्ट नहीं होता।

नैना चुपचाप चली जाती। उसकी आवाज़ में कुछ ऐसा जादू था कि वह उसकी बात टाल नहीं सकती थी। अनुरोध करने की भी हिम्मत न पड़ती थी। उसके स्वर में आदेश का दर्प नहीं, स्नेह का रस था। उसने कभी दासी के लिये भी कठोर शब्द का प्रयोग नहीं किया। वह तारो की बीमारी देखती थी । तन मन से सेवा करती थी। लेकिन भाव और शब्द से कभी शोक अथवा चिंता प्रकट नहीं की। चेहरा शान्त रहता था, आँखों में महानता थी और होंठों पर मृदुल मुसकान ?

[२]

राजा फिर शिकार खेलने चला गया। लेकिन तीतर और बटेर से उसकी तबीयत नहीं बहलती थी। खेतों और मैदानों में घूमना मुश्किल हो गया था। सूर्य की किरणें चुभने लगीं थी। वह दिन रात उस कोठी में पड़ा रहता जो तारो के विवाह के समय बनाई थी। उसके कुत्ते शिकार खेलते। उसके गुरगे गाँवों में जाते।

सुन्दर और कोमल फूल चुनकर लाते। 'कुमारी' ब्याही कोई भी उनके हाथ से बच नहीं पाती थी।

सारे देहात में हाहाकार मच गया। लोग सुन्दर और जवान बहुओं और लड़कियों को दूर रिश्ते नाते में भेजने लगे। तारो के प्रेम की आड़ लेकर यह बलात-गृहनिर्माण हुआ था। लोगों का बस चलता तो उसकी ईंट से ईंट बजा देते। लेकिन वह राजा की कोठी थी। राजा की जिसके पास फ़ौज और पुलिस है, जिसकी पीठ पर ब्रिटिश साम्राज्य की संगठित शक्ति है। विधाता ने बगुले को मेंढकों का शासक बना दिया था। वे क्या कर सकते थे? सब कुछ चुपचाप सहना पड़ रहा था।

न जाने यह बला कितने दिन और यहाँ पड़ी रहती कि संयोग से सावित्री आ गई। वह तारो की तीमारदारी में व्यस्त थी। राजा उसे देखने को तरस गया था। उसे देखकर जान में जान आई और प्रेम प्रकट किया, "आपने तो मुझे भुला ही दिया गर्मी और अधिक हो रही है। पल भर चैन नहीं पड़ती।"

"चैन नहीं पड़ती तो पहाड़ पर चले जाइये। मेरे पास बर्फ़ थोड़ी रखी है।"

"पहाड़ पर!" राजा को हैरानी हुई कि वह अब तक पहाड़ पर क्यों नहीं गया, "ठीक है। आप भी तैयारी करें।"

"क्षमा कीजिये। जब तक तारो अच्छी न हो जाये, मेरा

जाना तो मुश्किल है।"

"छोड़ो भी, किस झंझट में पड़ी हो।"

"क्या मतलब ?" सावित्री का स्वर कठोर हो गया। लेकिन राजा इस बात को समझ नहीं सका। उसने अपनी ही धुन में कहा, "आपके विचार बड़े ही नेक हैं। मैं इस बात का समर्थन करता हूँ। लेकिन जो काम हम दूसरों से करवा सकते हैं, जरूरी तो नहीं कि उसे हम खुद करें। दो चार दासियाँ देखभाल के लिये और छोड़ दो। क़िस्मत में जीना लिखा होगा तो बच ही जायेगी।"

"न बचेगी तो भी क्या ? रानियों से राजभवन भरे पड़े हैं।" सावित्री ने व्यंग किया।

राजा जवाब में मुस्करा दिया। इसमें वह अपनी प्रशंसा और गौरव का पहलू देखता था। ऐसी बात सुन कर उसे अपने राजा होने का विश्वास हो जाता था।

सावित्री ने राजा को कई बार इस अंदाज़ से मुस्कराते देखा था। उसे अपनी हीनता पर गर्व था। ग़लीज़ कीड़ा गंदी नाली में भी रेंग कर चलता था। राजा का यह स्वभाव बन चुका था।

सावित्री उस पर रुष्ट अथवा क्रोधित होना नहीं चाहती थी। लेकिन उसे अपने शब्दों में कड़वेपन का ध्यान बोलने के बाद होता था, और वह उसमें संशोधन कर लेती थी। अब भी वह नम्रता से बोली, "मैंने झूठ तो नहीं कहा था कि राजाओं के हृदय नहीं होता।"

यह मीठी फटकार सुनकर राजा खिलखिला कर हस पड़ा। सावित्री की ऐसी ही बातों पर तो उसे प्यार आता था। और, इस समय तो यह हँसी और क़हक़हा सर्वथा उचित था क्योंकि इस वाक्य से एक कहानी सम्बन्धित थी। सावित्री से पहली भेंट स्मरण हो आई थी।

राजा बम्बई में जहाँगीर फ़िल्म की शूटिंग देखने गया था। डायरेक्टर ने ऐक्टरों से उसका परिचय कराते हुये बताया था, "ये हैं श्रीमती सावित्री। आप नूरजहाँ का पार्ट अदा कर रही हैं।"

उसने एक नज़र सिर से पाँव तक नूरजहाँ पर डाली और उसे नमस्ते करते देखकर मुस्करा दिया। डायरेक्टर ने अब राजा की ओर संकेत करके सावित्री को बताया:

"आप हैं राजा धर्मपाल सिंह।"

"राजा?" सावित्री ने सवाल किया।

"हाँ, पतझड़ी रियासत के राजा।"

"ओह! मुझे आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" सावित्री ने यों कहा जैसे स्टेज पर खड़ी हो और रिहर्सल हो रहा हो।

उसने आगे बात चलाई, "आप तो अच्छे भले मनुष्य मालूम होते हैं। मैंने तो सुन रखा था कि राजाओं के हृदय नहीं होता।"

सब लोग हँस दिये थे और राजा भी हँस पड़ा था।

शूटिंग शुरू हुई। बाग़ में कबूतरों का दृश्य था। युवराज

सलीम दो कबूतर मेहरुन्निसा को पकड़ा कर चला गया। जब वापस आया तो उसके हाथ में एक कबूतर देखकर चकित रह गया और पूछा. "क्यों, "दूसरा कबूतर किधर गया ?"

"उड़ गया।"

"किस तरह ?"

"इस तरह।" उसने दूसरा कबूतर भी उड़ा दिया।

यही वह सादगी थी जिस पर सलीम मर मिटा। यही वह अदा थी जिसने मेहरुन्निसा को नूरजहाँ बना दिया। यही वह भोलापन था जिसने शाहजादे को बाप के विरुद्ध—सम्राट अकबर के विरुद्ध-विद्रोह करने पर अमादा किया। यही वह शोख़ी थी जिसने आख़िर में शेर अफ़गन की जान ली।

राजा धर्मपाल सिंह के सामने एक ऐतिहासिक घटना दोहराई जा रही थी। यह असल नहीं नक़ल थी। सावित्री मेहरुन्निसा नहीं अभिनेत्री थी। लेकिन उसकी आँखों में जो निर्भीकता थी, होठों पर जो मुस्कराहट थी, वह नक़ल नहीं थी। वह उसकी अपनी थी, यथार्थ, वास्तविक, सत्य और स्पष्ट।

राजा परिचय के समय भी सावित्री की यह निर्भीकता देख चुका था। उसके मन में हसरत पैदा हुई कि वह उसको अपनी नूरजहाँ बनाले।

अपनी रियासत में वह कितने ही शेर अफ़गनों के प्राण ले चुका था और उनकी पत्नियों को अपनी रानी बना चुका था। लेकिन उनमें एक भी मेहरुन्निसा नहीं थी। किसी ने भीराजा के मन को

जंजीरों में जकड़ लिया है।

नारी ने नर का साथ छोड़ दिया है। उसका अस्तित्व मिटता चला जा रहा है। वह माँ, बहन, स्त्री और दासी बनकर रह गई है। उसकी आत्मा पुरुष को और अपने आप को स्वतन्त्र देखने के लिये तड़प रही है।

सावित्री नारी थी। उसने अपने अस्तित्व को मिटने से बचा रखा था। उसने ग़ुलाम मर्द की ग़ुलामी क़बूल करने से इनकार कर दिया था। वह इसलिये यहाँ आई थी कि राजा धर्मपालसिंह को धर्मपाल बनाये। उसे थोड़ी बहुत सफलता भी मिली थी। वह हर एक अवसर पर राजा से आगे बढ़ जाती थी और धर्मपालसिंह को अपने साथ आने का निमन्त्रण देती थी। उस दिन होली खेलते समय उसने अपनी आँखों में नर नारी के सहज सम्बन्ध की सनातनता भरकर आगे और पीछे का अन्तर मिटाया था। रंग की पिचकारी से रूढ़ियों के बन्धन को गलाया था

लेकिन जिस नारी ने शाहज़ादा सलीम को अकबर महान् के विरुद्ध विद्रोह के लिए उभारा था उसके लिए यह सफलता बहुत मामूली थी।

सावित्री जानती थी कि पुश्त दर पुश्त की परतंत्रता राजा धर्मपाल सिंह का स्वभाव बन चुकी है। उसके हृदय के विद्रोह की चिनगारी बुझ चुकी है। वह कठपुतली है, कंकाल है। इसलिए सब कोशिश बेकार है।

कोशिश के बेकार होने का एहसास होते हुए भी सावित्री

और भी पस्त बना दिया जाता था। जिन नींद के मातों को सजग गान सुनाने की आवश्यकता थी उन्हें सुलाये रखने के लिये लोरियाँ सुनाई जाती थीं। फ़िल्म कम्पनियों के मालिक थे वे व्यापारी और महाजन जिनके जीवन का उद्देश्य था किसी भी ढंग से रुपया बटोरना। डायरेक्टर थे वे लोग जिन्हें न साहित्य से रुचि थी, न मानवता से हमदर्दी। इस अधिकार प्राप्ति में उनके विशेष गुण थे चापलूसी, धोखा, पाखण्ड।

इस वातावरण में उसका दम घुटा जा रहा था। जब राजा धर्मपालसिंह ने उसे अपने साथ चलने को कहा तब उसके जीवन का कोई ध्येय न था, कोई मंजिल नहीं थी। एक नया मार्ग अकस्मात सामने खुल गया और वह उस पर चल पड़ी। सोचा था कि शायद इसी में कुछ भलाई छिपी हो। शायद वह इस हृदय हीन मनुष्य के सीने में दिल पैदा कर सके। लेकिन यह भ्रम भी टूट गया। उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि यहाँ नारी की संजीवन शक्ति सफल नहीं हो सकती। उसकी आँखों में चमत्कार अब भी था, लेकिन वह एक कंकाल में जिन्दगी नहीं लौटा सकती थी। वह राजा को इन्सान नहीं बना सकती। राजा के क़हक़हे खोखले हैं और खोखले ही रहेंगे। वह इस खोखलेपन से ऊब जरूर गई थी। पर उसका अपना अस्तित्व सुरक्षित था, वह जो चाहे कर सकती थी। यहाँ टिके रहने में कुछ न कुछ लाभ दीख पड़ता था। एक ओर शोषित निर्जीव थी और दूसरी ओर अशक्त राजा। न वह कुछ करने को तैयार होती थी

और न यह कुछ करने में समर्थ था। श्मशान का करुणाजनक दृश्य था। मुर्दे जलाये भी नहीं गये कि गिद्ध उन पर मंड़राने लगे।

सावित्री को इस श्मशान में अपनी उपयोगिता नजर आती थी। अगर दो चार लाशों को भी गिद्धों की झपट से बचाया जा सके तो भी- तो भी यह कुछ काम तो था।

अब उसे तारो की तीमारदारी का मौक़ा मिला था। वह अपने मन की पूर्ण शक्ति से उसकी सेवा में व्यस्त हो गई। राजा उसके मुस्कान से वंचित होगया था। वह सैर और शिकार में उसे अपने पास रखना चाहता था। लेकिन उसे एक कठपुतली राजा का मन बहलाव करने की अपेक्षा एक देहाती लड़की को— एक पीड़ित नारी की जान बचाना अधिक प्रिय था। राजा ने उसकी दृढ़ता को जानते हुए इस बात को तूल नहीं दिया।

दो चार दिन बाद राजा ने इसी बात को दूसरे शब्दों में दोहराया "इस बार गर्मी कुछ पहले ही से शुरू हो गई? तुम यहां कैसे रह सकोगी? बेहतर है हमारे साथ ही पहाड़ पर चलो।"

"मैंने आप से पहले कहा था और अब फिर कहती हूँ कि तारो को छोड़ कर पहाड़ तो क्या मैं स्वर्ग भी जाने को तैयार नहीं।"

"सच है, औरत अपनी जिद कभी नहीं छोड़ती।"

"क्या आपने सुना नहीं कि त्रियाहठ राजहठ से बड़ी होती

है ?" सावित्री मुस्कराई, राजा भी मुस्करा दिया।

"आप जायें, मैं फिर आऊगीं।"

राजा दूसरे दिन पहाड़ को चला गया।

[३]

सायंकाल का समय था। अँधेरा प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। तारो की दशा चिन्ताजनक थी। उसकी सांस उखड़ी उखड़ी चल रही थी। नाड़ी सुस्त पड़ गई थी। दिल डूबा जा रहा था। पांव वर्फ जैसे सर्द होगये थे। सावित्री और नैना सिर झुकाये पास बैठी थीं, उदास और चिंतित। सावित्री के चेहरे पर धैर्य्य अधिक और उदासी कम थी। लेकिन नैना तो विषाद की प्रतिमा दीख पड़ती थी। उसका चेहरा उतर गया था। आँखें आर्द्र थीं। ठोढ़ी झुककर छाती से जा लगी थी।

थोड़ी देर पहले डाक्टर दवा देकर गया था। उसके जाने के बाद हालत एकाएकी खराब हो गई। सिपाही फिर उसे बुलाकर लाया। उसके कमरे में पग रखने की देर थी कि नैना फूट पड़ी. "डाक्टर! डाक्टर! इसे बचाओ!!" और वह बच्चों की तरह रोने लगी।

"नैना! इतनी समझदार होकर घबराती क्यों हो।" सावित्री ने तसल्ली दी, "घबराने से तो कुछ भी न बनेगा।"

डाक्टर ने नाड़ी पर हाथ रखा। मरीज की हालत का ध्यानसे निरीक्षण किया। फिर दवा चमचे में डालकर सावित्री की सहायता

से तारो को पिलाई और कहा, "फिक्र की कोई बात नहीं। दिल में हरारत कम हो गई थी। अभी सब ठीक हो जायेगा।"

"डाक्टर साहब आपका एहसान न भूलूँगी।' नैना ने इत्मीनान से साँस ली।

डाक्टर और सावित्री ने एक दूसरे की ओर देखा। इन शब्दों की गूँज धीरे धीरे बन्द हो गई और कमरे में पहले से भी अधिक निस्तब्धता छा गई।

तारो की साँस फिर ठीक चलने लगी। डाक्टर रात भर वहीं ठहरा। तीन तीन घंटे बाद दो इंजेक्शन दिये और दवा पिलाई। नैना सावित्री और डाक्टर तीनों की रात आँखों में ही गुज़र गई। सुबह का उज्ज्वल प्रकाश फैला तो तारो की हालत संभल चुकी थी और उसे होश आ गया था।

धीरे धीरे वह स्वस्थ होने लगी। लेकिन अब भी कभी कभी ज्वर हो जाता और सन्निपात का दौरा आ जाता। वह कपड़े फाड़ती और चारपाई से उठ उठकर भागती। सावित्री नैना की मदद से उसे पकड़ कर रखती। जब वह दोनों के क़ाबू से बाहर हो जाती तो सिपाही उनकी सहायता करता।

पहले सिपाही औरतों की मौजूदगी में आने से कतराता था। लेकिन ज़रूरत ने असमंजस को दूर कर दिया और वह बिना झिझक अन्दर जाने लगा। वह तारो के शरीर पर काबू पा लेता था।

तारो पड़े पड़े गाने लगती। बेशुमार बातें करती। कभी तेजो

और श्रवण को बुलाती और कभी कहती, "मेरी मैना को मुझे दे दो। वह भूखी है, मैं उसे चोगा दूँगी, चूरी खिलाऊँगी। वह अपने माही के लिये तड़प रही है। मैं उसे माही से मिलाऊँगी।"

कभी इन बातों का कोई सिर पैर न होता और किसी की समझ में कुछ न आता। उसके दिमाग़ में भिन्न भिन्न दृश्य घूमते और वह चिल्लाती, "देखो, देखो, देखो। वह राक्षस खड़ा है। वह कुत्ता आया।"

यद्यपि यह सब कुछ सन्निपात की अवस्था में कहा जाता था लेकिन इन बातों से मरीज के वास्तविक दुख का पता चल जाता था। उसके मन की व्यथा फूट निकलती थी। डाक्टर आश्चर्य के साथ उसे देखता और सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहता, "सदमे का असर अभी कम नहीं हुआ। बेचैनी ज्यादा है।"

"डाक्टर साहेब, बेचैनी क्यों न हो? जंगली चिड़िया को पिंजड़े में बंद कर दिया जाय तो वह ज़रूर तड़पेगी।"

डाक्टर ने देखा कि सावित्री जब ये शब्द कह रही थी तो उसके सौम्य, शान्त और उदार मुख पर दुख और क्रोध की लहरें सी उठ रही थीं और सुन्दर आँखें तनिक गहरी हो गई थीं। लेकिन होठों के बंद होते ही लहरें थम गई, चेहरा शान्त पड़ गया और आँखों की छाया लौट आई। डाक्टर को लगा कि वह एक ऐसे समुद्र तट पर खड़ा है जो देखने में शान्त है लेकिन अपने भीतर तूफ़ानी लहरों को छिपाये हुये बैठा है।

अनुमान लगाया कि इस महिला को भी भयंकर पराजय का सामना करना पड़ा है लेकिन वह अपनी क्षति को, अपने ग़म को प्रतिष्ठापूर्ण धैर्य के साथ भीतर छिपाये हुये है। समुद्र की सतह पर फिर हलचल हुई और तूफ़ानी लहर फिर ऊपर उठी, "और पिंजड़े में उसे भूखा प्यासा भी रखा जाय।"

डाक्टर सब कुछ समझते हुये भी अनजान बनने की कोशिश कर रहा था। वह अपने आप को धोखा दे रहा था। वह कोई ऐसी बात सोचना नहीं चाहता था जिससे उसकी स्वामिभक्ति पर आँच आये। जिससे राजा के प्रति घृणा उत्पन्न हो। सावित्री ने यथार्थ पर से पर्दा उठा दिया। वह अब आँखें बन्द नहीं कर सकता था। उसने तारो की ओर देखा और उसका मन ग्लानि और क्षोभ से भर गया। अपने आपको धोखे में रखने का कोई कारण मालूम न होता था। तारा की स्थिति के लिये किसी को दोषी ठहराने से पहले वह अपने ही बारे में सोचने लगा। नारी पर अत्याचार करने में वह भी तो अपवाद नहीं है। उसके मस्तिष्क में एक घटना उभर आई।

शहर में एक रईस के लड़के ने अपनी पहली पत्नी से नाराज़ हो कर दूसरी शादी करली थी। उस औरत पर न सिर्फ़ सौत ला बैठाई गई थी बल्कि घर में उसके साथ निर्दयता पूर्ण व्यवहार किया जाता था, दासियों और लौंडियों से भी बदतर। वह कुछ दिन तो चुपचाप सहन करती रही। आखिर एक दिन सब लाज शर्म छोड़ कर घर से बाहर निकल आई और खुले बाज़ार

अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का ढिंढोरा पीटने लगी। वह अस्पष्ट और अंट शंट गीत गाते हुये चलती। वेकार लोगों, लड़कों और बच्चों का हजूम उसके पीछे लग जाता। वह उस रईस की दूकान के सामने खड़ी हो कर रईस और उसके लड़के के नाम पर रोती और दुकान में पत्थर फेंकती।

कई दिन तक यह सिलसिला जारी रहा। आहिस्ता आहिस्ता जन सम्मति उस औरत के पक्ष में हो गई और मामला अदालत में पहुँचा। लेकिन फै.सला होने से पहले ही रईस मजिस्ट्रेट से मिला। कौन जाने उससे क्या कहा और क्या नहीं कहा? फिर, वह इस डाक्टर के पास आया ओर दो दिन में सारा मामला साफ हो गया। लोगों को यही पता चला कि उस औरत का दिमाग़ खराव हो गया था और उसे पागलखाने पहुँचा दिया गया है।

डाक्टर की अंतरात्मा उसे फटकार भेज रही थी और वह सोच रहा था कि आज रानी की भी वही हालत है। उसकी आत्मा से खून वह रहा है। वह राजा के नाम पर विलाप कर रही है, उसकी हृदय हीनता पर पत्थर फेंक रही है। फिर यह सावित्री और नैना रोग के मर्म को उससे अधिक समझती थीं। वे औरतें हैं। पीड़ित औरत से उनकी सहानुभूति उचित है। और, वह अपने आप से पूछने लगा।

"क्या मर्द औरत पर इसी प्रकार अत्याचार करता रहेगा?"

उस दिन से वह तारो का इलाज पूर्ण मनोयोग से करने लगा। अब वह उसे डाक्टर की हैसियत से नहीं, इंसान की नज़र से देखता था। तारा अब उसके नज़दीक रानी नहीं अबला नारी थी। वह भी अबला नारी पर अन्याय करता रहा है। वह भी अत्याचारी और पापी है। उसे अपने पाप का प्रायश्चित्त करना है। परिणाम यह हुआ कि दिल भी दिमाग़ का साथ देने लगा। तारा की हालत सँभलने लगी। डाक्टर की सहानुभूति, सावित्री और नैना का प्यार उसकी ज़िन्दगी का सहारा बन गये।

वह अपने आसपास को जानने लगी थी। पास खड़े मनुष्य को कुछ कुछ पहचानने लगी थी। एक बार जब सिपाही दवा लेकर कमरे में आया तो तारा उसे देखकर हठात पुकार उठी, "श्रवण! तुम आगये। गाँव से आये हो न? वहाँ सब लोग राज़ी ख़ुशी थे?"

सिपाही चकित और अवाक् उसके मुँह की ओर ताकने लगा। उसकी समझ में न आता था कि रानी की बात का क्या जवाब दे।

"श्रवण, तुम बोलते क्यों नहीं? क्या नाराज़ होगये मुझसे? मैं तो तुमसे नाराज़ नहीं श्रवण।" तारा फिर बोली।

नैना ने उसे यों बोलते देखा तो उसे भय लगा कि फिर सन्निपात का भूत उसके सिर पर सवार हुआ है। उसने तारा को चुप रहने की ताकीद की। वह चुप हो गई। लेकिन जब

सिपाही कमरे से बाहर जाने लगा तो फिर बोल उठी, "श्रवण, तुम कहाँ जाते हो ? मेरे पास बैठो। गाँव की बात सुनाओ।"

सिपाही बीमार की बात समझकर बाहर चला गया। लेकिन तारो ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगी। वह नैना के लाख समझाने पर भी सिपाही को वापस बुलाने के लिये ज़िद करती रही।

सिपाही लौट आया और उसके क़रीब बैठ गया। तारो ख़ामोश पड़ी उसे देखती रही। यह वही सिपाही था जिसे उसने पहले भी दो बार देखा था। एक बार उसे श्रवण समझ कर प्रसन्न हुई थी और दूसरी बार यह भ्रम टूट जाने पर दिल को कठोर आघात पहुँचा था। उसका जीवन निरुद्देश्य और निरर्थक हो गया था। आज वह बीमार थी। आदमी को भली-भाँति पहिचानन हीं सकती थी। वह फिर भ्रांति में पड़ गई थी, और उसके लिये भ्रान्ति ही हितकर थी। वह सिपाही की ओर देखने लगी तो देखती ही रही—देखती ही रही।

कितने दिनों बाद उसके होठों पर वह मुस्कराहट प्रकट हुई जिसे देखकर उसे मनमोहनी नारी कहा जा सकता था। इस देखने का सुख उसे ही मालूम होगा क्योंकि देखते ही उसे नींद आ गई और वह आराम से सो गई।

सावित्री का कोई मित्र मिलने आया था। वह उसके साथ घूमने गई थी। उसके मित्र अकसर आते रहते थे। जिस तरह नई नई औरतें और रंडियाँ बुलाना राजा का शग़ल था उसी

तरह मित्रों से मिलते रहने में सावित्री स्वच्छंद थी। राजा को इस पर एतराज नहीं था, किसी को भी एतराज नहीं था। लेकिन जब से तारो बीमार हुई थी उसने खुद ही मिलने से इनकार कर दिया था। अगर किसी का खत आता तो वह जवाब में लिख भेजती—"इन दिनों मुझे फुरसत नहीं है। आप आने का कष्ट न करें।"

जब तारो अच्छी हो गई और सावित्री को फ़ुरसत मिली तो यह मित्र मिलने आया था। वह सुन्दर और सजीला जवान था। लेकिन वह था कौन? कहाँ से आया था? इस बारे में कोई कुछ नहीं जानता था। वह अथिति गृह में ठहरा था। सावित्री ने भी रात वहीं गुज़ारी थी क्योंकि उन्हें सुबह होते ही घूमने जाना था।

तारो काफ़ी देर तक सोती रही। सोते समय उसके चेहरे पर उल्लास और होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी, जैसे वह कोई मधुर स्वप्न देख रही हो। जब आँख खुली तो उसकी अवस्था में आश्चर्यजनक अंतर था। उसके निर्जीव गालों पर ताज़गी झलक आई थी और सूनी आँखों में सप्राण प्रतिभा चमक रही थी।

नैना ने यह परिवर्तन देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। इस परिवर्तन का कारण समझने में भी उसे देर न लगी।

"सैना कहाँ है?" तारो ने सन्निपात से छुटकारा पाने के बाद

पहली बार पूछा।

'यहीं है। मैं उसे ले आई थी," नैना ने उत्तर दिया।

"ज़रा दिखाओ तो सही।"

नैना मैना का पिंजड़ा ले आई और पलंग पर रख दिया। तारो ने उसे बड़ी ही उत्सुकता से देखा। इधर उधर हिलाया। खिड़की खोलकर मैना को बाहर निकाला। उसके परों को टटोला। छाती से लगाकर सहलाया, पुचकारा और उसकी चोंच अपने मुंह में डालकर प्यार किया। चोगा दिया।

मैना को चोगा तो पहले भी मिलता था। लेकिन वह इस प्यार से वंचित रही थी। आज अचानक वह प्यार पाकर पक्षी का मन भी मुहब्बत से भर गया और वह प्रसन्न होकर बोल उठी, "माही आया ! माही आया !"

[४]

बाग़ में रहना शहर में रहने से बिल्कुल ही भिन्न था। उस जगह हर वक्त उदासी छाई रहती थी। कमरे में खुले होने के बावजूद दम घुटा जाता था। विषादयुक्त भावनाओं से मन कुंठित रहता था। लेकिन बाग़ का वातावरण सुखप्रद और सुन्दर था। कमरों के चारों तरफ़ दरवाज़े थे। रोशनदान थे। ताज़ा हवा और स्वच्छ प्रकाश अधिक मात्रा में अन्दर आता था। तारो बीमारी के कारण अभी तक इतनी निर्बल थी कि वह चारपाई से उठकर बाहर नहीं जा सकती थी। लेकिन बाहर

से आने वाली हवा, फूलों की सुगन्ध और पक्षियों के मधुर स्वर, उस तक पहुँचा देती थी। समस्त वातावरण सुगन्धिमय और हर्षवर्धक था। जो क्षण वीरता या उसके शरीर में नवीन शक्ति का संचार करता था, उसकी आत्मा में उल्लास भरता था। ऐसा महसूस होता था जैसे छोटे छोटे असंख्य पक्षी उसके भीतर बैठे गा रहे हों।

सावित्री के पास दो कमरे थे। जिस कमरे में तारो का पलंग बिछा था, उसमें मुख्तसर सा सामान था। पाँच सात कुर्सियाँ, एक मेज़ और एक तिपाई रखी थी। फ़र्श पर दरी बिछी थी। पलंग के दाईं ओर कानस था जिस पर एक गुलदस्ता दो फ़ोटो, एक तस्वीर रखी थी। एक सावित्री का फ़ोटो था और एक किसी नौजवान का। शायद यह वही नौजवान था जो अभी सावित्री से मिलने आया था।

तारो के नज़दीक फ़ोटो और तस्वीर में कोई फ़र्क़ नहीं था। वैसे वह हरएक चीज़ को पहचान सकती थी। उसने सावित्री को पहचान लिया था और नौजवान की फ़ोटो को भी। उसने यह भी जान लिया था कि वह तरुण स्वस्थ और सुंदर है। वह कोई इंसान है, राजा नहीं है।

तस्वीर में नौजवान औरत दिखाई गई थी। उसकी छाती खुली थी। मुख पर सौम्य और आँखों में दृढ़ निश्चय था। लम्बे लम्बे बाल पीछे को लटके हवा में उड़ते हुये मालूम होते थे। सामने मार्ग ऊबड़ खाबड़ था। वह किसी दूरस्थ मंज़िल

की ओर बिना रोक टोक बढ़ी जा रही थी।

तारो चित्रकार के मतलब को समझ नहीं सकी। मगर तस्वीर उसे अच्छी लगी। उसे देख कर मन के भीतर उत्साह उत्पन्न होता था और कोई अज्ञात भावना उभरती मालूम होती थी।

तारो को कमरे की हर एक वस्तु भली और प्यारी लगती थी कारण शायद यह था कि उसे बीमारी के पश्चात् स्वास्थ्य प्राप्त हुआ था। एक तरह से उसका यह नया जन्म था, नया वातावरण था। शरीर में नया ख़ून उत्पन्न हो रहा था। नई ज़िंदगी लौट रही थी। दिल में नई उमंगें उठ रही थीं।

मैना का पिंजड़ा उसके समीप खिड़की में लटका रहता था। वह उसे चाव से देखा करती थी। मैना से प्यार करती थी। दोनों वक्त उसे अपने हाथ से चोगा देती थी। जब मैना अपने मन का राग अलापती थी—"माही आया, माही आया!" तो तारो के मन में हूक सी उठती थी। संगीत की मधुर तान हृदय को झंझोड़ती हुई आत्मा की गहराइयों में उतर जाती थी। उसके भीतर हलचल मच जाती। तूफ़ान बरपा हो जाता। जो बोली किसी समय फीकी, कृत्रिम और भावना, रिक्त हो गयी थी उसमें अब हृदय की पुकार भरी थी।

सिपाही कमरे में अकसर आता जाता था। तारो जान गई थी कि वह श्रवण नहीं है, फिर भी उसकी शक्ल जानी पहचानी मालूम होती थी। लेकिन वह इसे भ्रान्ति समझ कर टाल देती

थी। उसे समीप आता देख कर बरबस परे धकेलती और मन को परचाने के लिये कहती—"वह एक सिपाही है। मामूली सिपाही रियासत का तुच्छ कर्मचारी।"

लेकिन उसका कमरे में आना बहुत ही अजीब सा लगता था। वह कोमल प्रभाव उत्पन्न करता था। उसके आने से सारा कमरा किसी परोक्ष वस्तु से भर जाता था। जैसे वह फूलों की सुगन्ध और पक्षियों के मधुर बोल अपने शरीर के साथ लिपटाये फिरता हो।

और, जब वह कमरे से बाहर चला जाता तो सूनेपन का एहसास होता। तारो के मन पर आघात सा लगता। आत्मा में एक शून्य सा बन जाता। जैसे, वह भीतर की कोई वस्तु अपने साथ लेता गया हो।

तारो का जी सिपाही से बातें करने को चाहता था। लेकिन एक झिझक थी जो बोलने नहीं देती थी। वह दूसरों की उपस्थिति में उससे कैसे बात करे? फिर उस समय तो और भी मुसीबत हो जाती थी जब वह एकान्त में भीतर आ जाता था। तारो का कलेजा धक धक करने लगता और आत्मा का कण कण सिहर उठता।

एक दिन सावित्री उसके पास बैठी बातें कर रही थी। वह खूब बन संवर कर आई थी। उसने बढ़िया साढ़ी पहन रखी थी। माँग में सेंदुर रचा था और गोरे चौड़े माथे पर लाल बिंदी लगाई थी। उसके अंग अंग में जवानी थिरक रही थी। होठों

पर मुस्कराहट थी। जब वह सुन्दर पुतलियों को घुमा-घुमाकर बात करती थी तो माथे पर भी विचारों की लहरें उठती थीं। जिनके कारण बिंदी हरकत में आने लगती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई बीरबहूटी मंद गति से नृत्य कर रही हो।

आज फिर उसके किसी मित्र को आना था। वह उसे लेने स्टेशन पर जा रही थी। सिपाही अंदर आया, उसने सावित्री को सूचना दी, "सरकार मोटर तैयार है।"

"बहुत अच्छा।" सावित्री ने कलाई पर बँधी घड़ी पर नज़र डाली और सिपाही से कहा, "अभी वक्त काफ़ी है। मैं ज़रा ठहरकर आती हूँ।"

तारो सावित्री की बातों में आनन्द ले रही थी। वे बातें सावित्री की पहली ज़िंदगी से सम्बन्धित थीं, मर्दों से सम्बन्धित थीं, बम्बई शहर और समुद्र से सम्बन्धित थीं। उनमें विस्तार और घुमा घुमी थी। एक नारी की स्वच्छंदता थी।

सिपाही के आने से सिलसिला टूट गया। पहले तो उसका आना इतना न अखरा लेकिन उसके वापस चले जाने पर तारो ने शिकायत की, "यह सिपाही आप ही आप अंदर चला आता है।"

"तुम न आने दो।" सावित्री मुस्कराई। तारो ने शर्म से गर्दन झुकाली। सावित्री प्रसन्न हुई कि वह अलंकार में कही गई बात भी समझ गई है। फिर स्वर बदल कर बोली, "क्यों, तुम्हें बुरा लगता है?"

"बुरा ! नहीं तो।"

"बुरा नहीं तो अच्छा है। आने दो।" सावित्री फिर मुस्कराई। तारो फिर लज्जित हो गई। और नजर परे हटाकर दूर देखने लगी। उसकी निगाहें दरवाजे पर ऐसे पड़ रही थीं जैसे वह सिपाही के आने की प्रतीक्षा कर रही हो। सावित्री चुप बैठी थी। वातावरण बोझिल और स्थिति कुछ जटिल हो गई थी। तारा ने उलझन मिटाने की नीयत से पूछा, "उसका नाम क्या है ?"

"नाम !" सावित्री बोली। उसे कभी नाम पूछने की ज़रूरत महसूस न हुई थी। काम पड़ने पर वह उसे संतरी कहकर पुकारा करती थी। और उसके नज़दीक यही उसका नाम था। वह फ़ौरन उठकर दरवाज़े पर गई और संतरी कहकर आवाज़ दी।

"आप तो बड़ी जल्दबाज हैं। मैंने बुलाने को थोड़े ही कहा था।"

"हर्ज क्या है ? जब तुम्हें नाम जानना है तो इतनी सी साधारण बात को दिल में क्यों रखा जाय।"

सिपाही ने कमरे में प्रवेश किया।

"छोटी रानी तुम्हारा नाम पूछती हैं।" सावित्री बोली।

सिपाही ने फीकी सी हँसी हँसकर गर्दन झुकाली और बायें हाथ की उँगलियाँ दाये हाथ में लेकर दबाने लगा।

"शर्माते क्यों हो ? नाम बताओ।"

सिपाही ने गर्दन ऊपर उठाई। उसके होंठ हिलते नज़र आये। उसने शायद कुछ कहा था जो सुनाई नहीं दिया।

"बताओ, बताओ। ज़रा ज़ोर से बोलो।"

"कर्नल।" उसने बड़े परिश्रम के साथ धीरे से कहा।

"कर्नल।" सावित्री ने दोहराया, अच्छा तुम कर्नल हो, पर काम सिपाही का करते हो ?"

कर्नल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुप खड़ा रहा। शायद वह सावित्री की बात समझ नहीं सका। अगर समझ जाता तब भी कुछ न कह सकता। लेकिन उसकी चौड़ी चकली छाती, मज़बूत कन्धे, लम्बा क़द और सबल शरीर कह रहा था, "हाँ, मैं कर्नल हूँ। कर्नल हूँ। सिपाही का काम इसलिये कर रहा हूँ क्योंकि मुझे कर्नल बनने का अवसर नहीं मिला। किसी ने बनने नहीं दिया।"

"तुम्हारा गाँव कौन सा है ?"

"मर्दन बास।"

गाँव का नाम सुनकर तारो चौंकी। वह सिपाही के मुख की ओर ध्यान से देखने लगी। जैसे कोई पुराना परिचय याद कर रही हो। उसे कर्नल की शक्ल पहले ही जानी पहचानी मालूम होती थी। लेकिन वह इस बात को भ्रम समझकर नज़र अन्दाज़ करती आई थी। लेकिन आज भ्रम, वहम नहीं रहा, यथार्थ बन गया था। एक पुरानी स्मृति उसके मस्तिष्क में उभर रही थी जिसके कारण आँखें मुस्करा उठीं और उसका चेहरा जो

बीमारी के कारण काला पड़ गया था एक दम चमक उठा। वह कुछ कहना चाहती थी पर झिझक रही थी।

सावित्री इस अवस्था को समझ गई। उसने घड़ी पर दृष्टि डाली और कुर्सी से उठती हुई बोली, "गाड़ी का समय हो गया है। मैं चलती हूँ, कर्नैल!" वह सिपाही को सम्बोधित करके मुस्कराई क्योंकि उसे संतरी के बजाय कर्नैल कहना विचित्र लगता था। "तुम छोटी रानी को दवा पिलाकर जाना।"

सावित्री चली गई। कमरे में ख़ामोशी छा गई। सिपही चुप खड़ा था। तारो पड़ी उसे देख रही थी कि मैना बोल उठी, "माही आया! माही आया!!"

तारो और कर्नैल दोनों मुस्कराये। ख़ामोशी टूट चुकी थी। तारो ने कर्नैल से पूछा, "सरचों से एक लड़की रत्नी तुम्हारे गाँव में ब्याही है? उसके घर वाले का नाम प्रतापा है। क्या तुम उसे जानते हो?" "जानता क्यों नहीं। वह मेरी भाभी है।" कर्नैल तनिक रुका फिर बोला, "प्रतापा मेरा बड़ा भाई है।"

तीन साल हुए कर्नैल रत्नी की बरात में तारो के गाँव आया था। जवानी का आरम्भ था। गोरे चेहरे पर छोटी छोटी मूँछें फूट रही थीं। वह अपने भरे शरीर और लम्बे क़द के कारण तमाम बरातियों में अलग दिखाई पड़ता था। सब लड़कियाँ उसी से अधिक मज़ाक़ करती थीं और वह लड़कियों में सबसे अधिक मज़ाक़ तारो से करता था। वह जी भरकर मज़ाक़ का बदला लेती थी। कर्नैल बैटरी का प्रकाश उसके चेहरे पर डाल

देता था। तीन दिन तक मज़ाक़ का यह सिलसिला चलता रहा।

अब बारात को विदा होना था। सब बराती खाट* पर आये थे। तारो रंग का घड़ा लिये ड्योढ़ी की छत पर बैठी थी। जब कर्नैल दरवाज़े से गुज़रने लगा तो उसने घड़ा उँड़ेल दिया। लड़कियाँ खिल खिलाकर हँस पड़ीं। कर्नैल ने मुँह ऊपर उठाया और देखता ही रह गया। रंग सिर से एड़ी तक बह रहा था।

इस घटना को याद कर कर तारो का देहाती अल्हड़पन जाग उठा और वह मुस्कराकर बोली, "कर्नैल! तब तो मैं भी तुम्हारी भाभी हुई।"

कर्नैल ने सिर ऊपर उठाया। दोनों की निगाहें क्षण भर के लिये मिलीं और फिर अलग हो गईं।

कर्नैल की निगाह फ़र्श पर गड़ी थी और तारो ऊपर छत की ओर देख रही थी। वह आगे कहना चाहती थी कि रत्नी मेरी सहेली थी। जब हम गाँव में थीं तो हम दोनों में काफ़ी बहनापा था। लेकिन वह कह नहीं सकी। शायद कहने की ज़रूरत भी नहीं थी।

रोशनदान के रास्ते सूरज की किरणें भीतर पड़ रही थीं। उनकी गर्मी से नन्हे नन्हे परमाणु वायु में नाच रहे थे। कमरे का वातावरण विह्वल हो उठा था।

---

* पंजाब में एक रिवाज जिसमें लड़के वाले दुलहन को ज़ेवर और कपड़े आदि देते हैं और लड़की का बाप दहेज़ देता है।

[५]

दो सवा दो महीने चारपाई से लगे रहने के पश्चात् तारो को कमरे से बाहर निकलना नसीब हुआ। सुबह का सुहावना समय था। ठंढी ठंढी हवा चल रही थी। तारो को टहलना बहुत ही भला मालूम होता था। शरीर में ज़िंदगी की लहरें दौड़ रही थीं। कोमल कोमल घास का स्पर्श सुखप्रद मालूम होता था। नन्ही नन्ही तितलियाँ नृत्य करतीं इधर से उधर गुज़र जाती थीं।

तारो उन्हें ऐसी उत्सुकता से देख रही थी जैसे ज़िन्दगी में पहली बार देखने का मौक़ा पड़ा हो। वे रंग बिरंगे परों को हिलाती फुर्र से उड़ जाती थीं। तारो हैरान थी। कि इनछोटे छोटे कमज़ोर परों में उड़ने की इतनी उमंग भरी है; तनिक सी आत्मा में इतनी तेज़ी और स्फूर्ति है। ये इन्द्रसभा की परियाँ तो नहीं जो देवता को भेंट चढ़ाने के लिये फूलों से सुगन्धि और मुस्कान लेने धरती पर उतर आती हैं?

वह यह दृश्य देखती रही और टहलती रही। लेकिन अभी शरीर में यथेष्ट बल नहीं था। ज़्यादा न टहल सकी। वह एक आम के नीचे उसके तने से पीठ लगाकर बैठ गई और दूर क्षितिज पर उड़ते हुये पक्षियों को देखने लगी।

नित्य की सैर से उसके शरीर में जान आ गई। धीरे धीरे रोग की सब दुर्बलतायें दूर होगईं। अब वह अपने आपको बिलकुल तन्दुरुस्त समझती थी और अनुभव करती थी कि उसके भीतर

कोई विशेष परिवर्तन आगया है। इस बीच में वह बहुत अधिक बड़ी हो गई है कि यह विचार हर समय उसके दिमाग़ पर छाया रहता था और वह प्रतिक्षण गम्भीर होती जा रही थी। नारी हृदय की भूखी दुर्बलता पर जो बीमारी में चिंघाड़ा करती थी तन्दुरुस्ती ने क़ाबू पा लिया था।

उसने जो कुछ सन्निपात की हालत में कहा था उसका तो उसे ज्ञान नहीं था। लेकिन पिछले दिनों जो बातें होश में कही थीं उन्हें स्मरण करके अब बहुत दुख होता था। विशेषतः वह घटना जब उसने रत्नी का ज़िक्र छेड़ कर कर्नैल से भाभी का सम्बन्ध स्थापित किया था उसे बहुत तंग करती थी। कर्नैल की वह निगाहें जो दिल के पार हो गईं थी किसी सूरत भी भुलाई न जाती थी। उनका ध्यान आते ही श्रवण का भोला भाला और हँस मुख चेहरा नजरों में घूम जात था।

तारो इस घटना को जितना भुलाने की कोशिश कर रही थी उतना ही वह अधिक याद आती थी। जितना वह कर्नैल को मामूली सिपाही समझती थी उतना ही उसका महत्त्व बढ़ता जाता था। उसमें कोई असाधारण आकर्षण था जो आप ही आप भीतर घुसता चला आता था। तारो उसे दूर धकेलती थी, बच बच कर रहती थी। उससे कहने की कोई बात होती तो वह स्वयं कहने के बजाय नैना से कहलवाती। बाग़ में टहलते समय अगर सामने कर्नैल दीख पड़ता तो वह वृक्ष की ओट में छिप जाती। जब वह दृष्टि से ओझल हो जाता तब उसे अपनी

हालत पर आश्चर्य होता। वह सोचती—"मुझे इस प्रकार छिपने की आवश्यकता क्या थी ? वह कोई शेर चीता तो है नहीं। मामूली सिपाही है और मैं............ मैं एक............
वह रुक जाती और विचार धारा का रुख बदल जाता, जैसे मैं उससे डरती हूँ ! अगर कोई मुझे इस प्रकार छिपते देखले तो क्या समझे ? मैं नहीं छिपूँगी। कभी नही छिपूँगी।"

इस निर्णय के बावजूद उसे कर्नैल के सामने आने का साहस न होता।

कर्नैल को भी जब कभी यह घटना याद आ जाती तो उसके समस्त शरीर में बिजली सी दौड़ जाती थी। अंग अंग में प्राण भर जाता थी। सचमुच वह एक रमणी की जादू भरी दृष्टि थी जिससे उसके जवान खून में उष्णता और गति भर दी थी। उसके दिल में ज़िंदगी नाच उठी थी।

लेकिन इन निगाहों के बारे में वह और कुछ नहीं सोच सकता था। आदमी किसी चमकते तारे के प्रकाश से आनंदित हो सकता है। उसकी प्रशंसा कर सकता है। लेकिन उसे प्राप्त करने की कामना कभी नहीं कर सकता, क्योंकि वह उसकी पहुँच से बाहर है।

तारा कोई देहाती लड़की तो थी नहीं, राजा की रानी थी। रानी भी यद्यपि नारी ही होती है। लेकिन उसके पास तक पहुँच सकना एक सिपाही के लिये असम्भव था। उस पर प्रतिष्ठा का बादल छाया था जिसे हटाना उसके बस की बात नहीं थी।

एक बार उसकी भाभी शहर में आई थी तो उसने बड़े गर्व से बताया था कि हमारी रानी तुम्हारी सहेली है और वह तुम्हें याद करती थी। रत्नी भी जानती थी कि तारा का विवाह राजा से हुआ है। लेकिन उसे यह उम्मीद नहीं थी कि कर्नैल भी उससे मिल सकता है और तारा के हृदय में उसकी याद अब तक सुरक्षित है। अनायास यह बात मालूम करके कि तारा उसे अब तक नहीं भूली रत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उसने तारा की जी भर कर प्रशंसा की और कर्नैल को बताया, "वह मन की इतनी साफ़ और स्वभाव की इतनी अच्छी थी कि सब लड़कियाँ उसे प्यार करती थीं। बातें ऐसी करती कि हंसते हंसते हमारे पेट में में दर्द होने लगता।"

जब वह शहर से लौटी तो उसने बड़े ही प्यार और दुलार के साथ कर्नैल से कहा कि अपनी रानी को मेरी ओर से "राम राम" कहना और बताना कि उसकी बीमारी की बात जान कर मुझे बड़ा दुख हुआ है।

कर्नैल ने भाभी से तो हामी भर ली पर तारा तक यह संदेश पहुंचाते उससे न बन पड़ा। उसके आगे भाभी का ज़िक्र छेड़ना बहुत ही कठिन था। अगर तारो स्वयं रत्नी के बारे में कोई बात पूछ लेती तो वह यह संदेसा भी सुना देता। लेकिन आप ही आप तारो के पास जाकर यह संदेशा देना उसके लिये मुमकिन नहीं था।

कर्नैल को देख कर तारो को अक्सर रंग वाली घटना स्मरण

हो आती थी। अपनी शरारत, सखियों का क़हक़हा और कर्नैल का रंग से भीगा चेहरा, क्रमिक घटनाओं की एक चित्रावली आँखों के सामने घूम जाती थी। रंग से भरे चेहरे और चकित आँखों से जब कर्नैल ने ऊपर की ओर देखा था तो उसमें न जाने ऐसा कौन सा आकर्षण उत्पन्न हो गया था कि वह कितने ही दिनों तक उसे भूल नहीं सकी थी। वह उसे मन ही मन में प्यार करती रही। बाद में रत्नी के साथ जो असुन्दर घटना घटी थी उसकी पृष्ठभूमि भी शायद यही प्यार था।

रत्नी पहली बार सुसराल से लौटी थी। वह सखियों के संग साग तोड़ने जा रही थी। तारो भी उनके साथ थी। रास्ते में हँसी मज़ाक शुरू हुआ। सखियों ने रत्नी को सुसराल के अनुभव बयान करने पर मजबूर किया। रिवाज के अनुसार रत्नी ने पहली रात की कहानी और कुछ दूसरे अनुभव बयान कर दिये। फिर सहेलियों की ओर से जिरह आरम्भ हुई। उसने हर एक सवाल का जवाब बड़ी बुद्धिमत्ता से दिया। पति के बारे में बहुत कुछ पूछा जाने के बाद चंचल तारो ने चुटकी ली, "अच्छा बहन, यह तो सुन लिया कि जीजा जी बड़े अच्छे हैं। तुम्हारे देवर कैसे हैं? कुछ उनकी भी कहो।" सब लड़कियाँ हँस पड़ीं।

रत्नी भी उसी देहात में पली थी। उसके रीति रिवाज़ को जानती थी। तारो के व्यंग को समझते हुए बराबर की चोट की, "मेरा देवर क्या तुमने देखा नहीं? उसके साथ होली खेल कर भी अगर तुम्हारा जी न भरा हो तो अब की तुम भी मेरे साथ

चलना। मैं देवर से तुम्हारी सिफ़ारिश कर दूँगी।"

इस बार जो कहकहा बुलंद हुआ वह पहले से भी अधिक ऊँचा और मज़बूत था। तारो ने गर्दन झुका कर हार मानी। लेकिन रज्जी ने उसे अधिक चिढ़ाने के हेतु उसकी ठोड़ी पकड़ कर सिर ऊपर उठाते हुए पूछा, "कहो बहन ! है न मंज़ूर ?"

तारो ने मुसकरा कर उसे धक्का दे दिया। वह झाड़ी पर जा गिरी। उसके शरीर में काँटे चुभ गये। नया सलवार और कुर्त्ता फट गया। लड़कियों ने तारो के इस व्यवहार की निंदा की। लेकिन रज्जी के मुख से एक भी अपशब्द न निकला। तारो का मन उसे कष्ट पहुँचाना तो नहीं था। मज़ाक़ की बात का गिला क्या ? चित्रावली चलती रहती। घटनायें, क्रमशः आगे बढ़ती गईं। दूसरी लड़कियाँ, उनकी बातें और उन बातों से सम्बन्धित समय और स्थान मस्तिष्क में घूमते गये, यहाँ तक कि गाँव के समस्त वातावरण ने स्पष्ट रूप धारण कर लिया। वे घर और दीवारें, खेत, वृक्ष और फिर तेजो और उसकी बातें। क्या हो गईं वे बातें जिनकी याद में इतना रस भरा था ? वह घण्टों उन्हीं की ध्यान में डूबी रहती।

इस वातावरण में एक आकृति ऐसी थी जिसे भुलाना मुमकिन नहीं था। वह हज़ार पर्दों से उभर आती थी। इधर उधर से ताँक झाँक करती थी। उसकी प्रेमपूर्ण प्रतिभायुक्त निगाहों से हृदय को प्रकाश मिलता था। चंचल श्रवण सामने आ खड़ा होता था। तारो लजाती, शर्माती, मुस्करा कर आँखें

झुका लेती।

आँख मिचौनी का खेल शुरू हो जाता। श्रवण की शक्ल अनेक ढंग से उसके सामने आती। उसका सजीलायौवन, विशाल मस्तिष्क और लम्बा क़द बार बार कल्पना-पट पर उभरते आते। फिर सब मिल कर एक मन मोहनी सूरत बन जाते।

तारो चकित रह जाती जब इस रूप में श्रवण के स्थान पर कर्नैल की झलक दीख पड़ती। वह झुँझला उठती तो श्रवण मुस्कराने लगता। श्रवण को परे हटाती तो कर्नैल सामने आ खड़ा होता। यह क्या तमाशा था? तारो ठगी सी होती जाती। उसे मालूम नहीं था कि उसकी मनोकामना ने कर्नैल और श्रवण का रूप धारण किया है। उन्हें एक दूसरे में मिला दिया है! श्रवण ख़ामोश बैठा है और कर्नैल उसके कंधों पर पाँव रख कर ऊपर उठ रहा है। दोनों में विचित्र समानता है। वे दोनों मर्द हैं, नौजवान हैं और दोनों में देहाती सादगी और बांकपन है। फ़र्क़ है तो केवल इतना ही जितना कि नाशपाती के पेड़ में बग्गू गोशे का पैबंद लगा देने के बाद रह जाता है। धरती यह फ़र्क नहीं देखती। वह उसे बराबर ख़ुराक पहुँचाती है, उसका विकास करती है।

तारो के मन में भी यह भेद मिट रहा था। उसमें देहाती श्रवण के लिये जो स्थान बना था उसमें कर्नैल भी समा सकता था और समाता जा रहा था। आप ही आप अन्दर चला आ रहा था।

तारा खुद अपने लिए एक समस्या बनी हुई थी। बैठे बैठे जब उसकी तबीयत इन विचारों से घबराने लगती वह उठकर टहलने लगती। मैना को पुचकारती, दुलारती, उससे मीठी बातें करती। नैना को स्नेह और श्रद्धा से देखती। वह तन मन से उसकी कृतज्ञ थी। वह जानती थी कि उसने बीमारी में प्राणपण से उसकी सेवा की है। नैना उसके बहुत निकट आ गई थी। पहले नैना उसका ध्यान रखती थी। अब वह स्वयं नैना का ध्यान रखना अपना कर्त्तव्य समझती थी। अगर उसे सिर में पानी डाले बहुत दिन बीत जाते तो वह बार बार कहकर उसे सिर से नहलाती। उसके बालों में कंघी करती और तेल डालती। रानी और दासी का भेद मिट चुका था

असाढ़ का महीना था। दिन भर तेज़ धूप पड़ती और सख्त लू चलती थी। शाम को घुटन के मारे जी घबराता था। सिर्फ़ सुबह कुछ सुहावनी और सुखमय होती थी।

तारो खुले मैदान में घूम रही थी। यह मैदान खेलने कूदने के लिये बनाया गया था। उसमें कोई वृक्ष नहीं था। तारो को एकान्त अखर रहा था। वैसे तो वह अक्सर तनहा घूमती थी। पर मन की ऐसी अवस्था कभी नहीं होती थी। शायद उसे इस बात का एहसास था कि सावित्री और नैना दोनों ही घर पर नहीं हैं।

एक मालिन के बच्चा होने वाला था। वह नौजवान थी और यह पहला अवसर था। उसकी तबीयत प्रायः ख़राब हो जाती। सावित्री

झुका ले बहुत दिलचस्पी लेती थी। अकसर उसकी आर्थिक सहायता कर देती थी। तारो को भी उससे सहानुभूति हो गई थी।

रात उसको अकस्मात प्रसव पीड़ा आरम्भ हुई। सावित्री ने नैना को साथ लिया और मालिन को अपनी मोटर में अस्पताल ले गई। वे दोनों अब तक नहीं लौटी थीं। तारो उदास थी वह मालिन के लिये चिन्तित थी।

बाग़ में आम, अमरूद अनार और नासपाती के पेड़ों पर फल पक रहे थे। फलों से पहले पेड़ों में फूल आये थे। जिनमें सुगंध थी और रंग था। जब से वे फल बनने लगे थे वे सुगन्ध नहीं छोड़ते, रंगो की नुमाइश नहीं करते। उनमें भीतर ही भीतर रस भर रहा था। वे पक रहे थे। जब भली प्रकार पक जायेंगे तो एक विशेष समय पर इन टहनियों से अलग हो जायेंगे जो अब उनके बोझ से झुकी जा रही थीं।

तारो को आज वृक्षों के समीप घूमना अच्छा नहीं लग रहा था। मन में कुछ ऐसे वैसे विचार उठ रहे थे। शरीर बोझिल हो रहा था। वह खुले मैदान में निकल आई थी। ऊपर नीला आकाश था और नीचे हरी घास-यहाँ घूमना अच्छा लगता था। फिर भी उसकी दृष्टि पेड़ों की झुकी हुई टहनियों पर जा पड़ती थी। उसे फिर वही विचार सताने लगता था, मालिन का विचार-माँ बनने वाली औरत का विचार!

दूर सड़क पर धूल उड़ती नज़र आई और दूसरे ही क्षण मोड़ पर एक मोटर दिखाई दी जो बाग़ की ओर आ रही थी।

वह सावित्री की मोटर थी। तारा का कलेजा धक धक करने लगा। वह जानना चाहती थी कि सावित्री क्या समाचार लाई है। वह मोटर से उतर कर सीधी उसकी ओर आ रही थी क्योंकि उसने तारा को वहाँ घूमते देख लिया था।

"बहन, मैं आज शाम की गाड़ी से जा रही हूँ।" उसने दूर ही से कहा।

सावित्री के जाने की बात सुन कर उसे आघात पहुँचा और वह बोली, "कहाँ ?"

"पहाड़ जा रही हूँ। तार आया है।" उसने एक दृष्टि तारा पर डाली। लेकिन उसका चेहरा किसी भाव को व्यक्त नहीं कर रहा था। जैसे यह वाक्य उसने सुना ही न हो। वह फिर बोली, "अगर तार न आया होता तो भी मुझे जाना था। मालिन की चिन्ता थी। वह अब ठीक है।"

"ठीक है मालिन ?" तारा ने पूछा। उसकी उत्सुकता देखकर सावित्री को महसूस हुआ कि उसे मालिन की बात पहले ही सुननी चाहिये थी।

"हाँ, ठीक है," वह बोली। "उसके लड़का हुआ है। नैना को उसके पास छोड़ आई हूँ। वह शाम को आयेगी। तुम हमारे पहाड़ से लौटने तक यहीं ठहरना। बाग़ में रहना स्वास्थ्य के लिये अच्छा है। मैं डाक्टर से कह जाऊँगी और ड्योढ़ी सरदार से भी।"

सावित्री एकदम बहुत सी बातें कह गई। शायद उसे जल्दी

थी इसलिये ज़ुबान अस्वाभाविक ढंग से कुछ तेज़ चल रही थी। वैसे बातें करने में सावित्री का बड़ा गुण यह था कि जिससे बातें करती थी उसकी भावनाओं का सदा ध्यान रखती थी। उसने देखा कि तारा की चैतनता उसका साथ नहीं दे रही है, वह पीछे रहकर कुछ और ही सोच रही है। तारा उसकी बात सुनने के बजाय ख़ुद कुछ पूछना चाहती है। वह रुक गई।

"मालिन का लड़का ठीक है?"

"हाँ, ठीक है।" सावित्री ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"कैसा है? तुमने तो देखा होगा?"

"देखा है। सब लड़के जन्म से ऐसे ही होते हैं·········" वह फिर रुक गई। वह कहना चाहती थी कि यह बेचारा तो माली ही बनेगा। लेकिन कहने से पहले उसे बात के असंगत होने का ज्ञान हो गया। आखिर वह तारा की सतह पर उतर कर बोली, "तुम्हें भी चाहिये लड़का?"

तारा चुप रही। उसका चेहरा लाल होगया।

"मैं राजा से कहूँगी कि वह तुम्हें अपने पास बुलाले। मेरे कहने पर वह ज़रूर बुलालेगा। फिर तुम्हारे भी लड़का होगा। जो राजा बनेगा। गद्दी पर बैठेगा·········।"

"नहीं, नहीं। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। मैं राजा के पास नहीं रहूँगी। मैं राजा को·········।"

तारा एकदम चुप होगई। उसकी दृष्टि सावित्री से दूर खुले मैदान पर—उस भूमि पर पड़ रही थी जिसमें कभी हल नहीं

चलाया गया । बीज नहीं डाला गया। उसमें विधवा की अभि-लाषा की तरह हरी घास उत्पन्न होती है और थोड़ी सी धूप लगने से सूख जाती है। सावित्री तारा की आँखों के बदलते हुए रंग को और चेहरे पर उठती हुई लहरों को देख सकती थी। उन्हें देखकर उसके पूर्ण और अपूर्ण विचारों का पता चलता था। सावित्री समझ गई कि धरती की बेटी नाराज़ हो गई है। वह राजा को जन्म देना नहीं चाहती क्योंकि राजा का अस्तित्व धरती के लिये बोझ बना चुका है।

[६]

राजा धर्मपाल सिंह हरसाल मार्च के अन्त अथवा अप्रैल के मध्य में काश्मीर भ्रमण करने जाते थे और अक्टूबर के मध्य तक वहीं निवास करते थे। चार पाँच महीने कश्मीर से बाहर रहने में उन्हें बड़ा ही त्याग करना पड़ता था और इस जगह पहुंचने के लिये उनकी आत्मा का कण कण तड़पा करता था। सच तो यह है कि राजा और काश्मीर में एक सहज सम्बन्ध था। हिमालय की यह उपत्यका धरती पर स्वर्ग थी और राजा का शरीर आठ देवताओं के अंश से बना था। वह भगवान का अवतार था। उसके रहने के लिये उचित स्थान काश्मीर—धरती पर स्वर्ग ही तो हो सकता था। इसलिये प्रति वर्ष काश्मीर आना और अधिक से अधिक समय यहाँ गुजारना उसका धर्म बन चुका था। वह जी जान से इस धर्म का पालन करता था।

एक साल राजा की रियासत में भयंकर अकाल पड़ा था।

बहुत से लोग भूख से मर गये थे। राजा उस साल भी धर्म पालन और कर्त्तव्य निष्ठा में अचल रहा। वह अपने पूरे लाव लश्कर और कुत्तों समेत काश्मीर आये थे।

ऐसी बात नहीं थी कि उन्हें अपनी प्रजा की चिन्ता न हो। लोगों की चीख पुकार और उनकी भूखी आहें पहाड़ पर भी उसका दिल दहलाती रही। वह उनके ग़म में घुल घुलकर दुबले हो गये थे। आखिर उन्होंने राज पंडित की राय से बनारस के एक बहुत बड़े ज्योतिषी को बुलाया था और प्रजा के कष्ट निवारण का उपाय पूछा था। राजपंडित और ज्योतिषी की निगरानी में महाकोटि यज्ञ हुआ। काश्मीर के ब्राह्मणों और पंडो को दो दिन तक पेट भर भोजन खिलाया और दक्षिणा दी। अगर रियासत में बैठ कर यह यज्ञ किया जाता तो हवन का धुआँ भगवान तक न पहुँच सकता। क्योंकि भूख से मरने वाले लोगों के विलाप और करुणाजनक आहें भी तो मार्ग ही में रह जाती थीं।

लेकिन पहाड़ पर पंडितों द्वारा की गई प्रार्थना भगवान ने सुन ली। राजा धर्मपाल सिंह की रियासत में वर्षा हो गई और लोग निहाल हो गये।

राजा नदी के किनारे अछाबल में रहता था। उसने बहुत सी हाउस बोटें ख़रीद रखी थीं। जिन पर वह खुद रहता था। वहां के रानियाँ भी रहती थीं जिन्हें साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होता था। वे वेश्यायें रहती थीं जिनके रूप, नृत्य और गाने की धूम राजा के कानों तक पहुंचती थी। फिर राजा के असंख्य

कर्मचारी रहते थे। कुत्ते रहते थे। कुत्तों के डाक्टर रहते थे।

राजा का सारा समय नाच देखने, गाना सुनने, वेश्याओं के साथ ताश अथवा उम्री के साथ शतरंज खेलने में व्यतीत होता था।

उम्री शतरंज खेलने में बहुत निपुण थी। ऐसी चाल चलती थी कि राजा चकित रह जाता था। उसके सामने बाज़ी मात नज़र आती थी।

लेकिन सावित्री की चाल उम्री से भी जबरदस्त थी। वह खुद कभी नहीं खेलती थी। सिर्फ राजा को मश्विरा देती थी कि यह मोहरा यहाँ रखा जाये तो कैसा रहेगा।

राजा को सावित्री की बुद्धि पर भरोसा था झट उसके अपने दिमाग़ में भी वही चाल होती थी। वह मोहरा उठा कर वहाँ रख देता था। और उम्री से बाज़ी जीत कर सावित्री की ओर यों प्यार भरी दृष्टि से देखता था जैसे कहना चाहता हो, "जब तुम मेरे पहलू में बैठी होती हो तो मेरी बुद्धि दोगुनी हो जाती है।"

इसके अतिरिक्त राजा कुत्तों से जी बहलाता था। यद्यपि वह कुत्तों के साथ इतना नहीं खेलता था जितना वेश्याओं के साथ. फिर भी वह काश्मीर भर में "कुत्तों का राजा" कहलाता था। कारण शायद यह हो कि वह अपने साथ सैकड़ों कुत्ते लाता था जिनके भौंकने की आवाज़ सतत हाउस बोटों से सुनाई देती थी और वह उनके साथ खुले बंदों खेलता था। लेकिन वेश्याओं के

आने का ज्ञान लोगों को कम होता था और उनके साथ खेल भी बंद कमरों में होता था। वरना ताज्जुब नहीं कि वह वेश्याओं का राजा ही प्रसिद्ध हो जाता।

जब अछावल में रहते रहते तबीयत ज़रा ऊब जाती थी तो धर्मपाल सिंह पन्द्रह बीस दिन के लिये श्रीनगर चला आता था। वहाँ मुंशीबाग़ से ज़रा परे झेलम के किनारे एक विशाल कोठी किराये पर ले रखी थी। सिगरेटों की पेटियाँ, ह्विस्की की बोतलें और अन्य खाने और पीने की वस्तुओं का स्टाक इस जगह रहता था। अछावल में आवश्यकता-अनुसार मंगवा लिया जाता था। बड़ी बड़ी दावतें और धूमधाम के जशन इस जगह होते थे। उनमें सम्मिलित होने के लिये बड़े आदमी काफ़ी तादाद में मिल जाते थे और खुले दिल से इन वस्तुओं का प्रयोग होता था।

श्रीनगर में रहते समय राजा की ज़िन्दगी का कार्यक्रम ज़रा बदल जाता था। यहाँ उसे लोगों से मेल जोल बढ़ाना और अपने आपको मिलनसार और उदार सिद्ध करना होता था। वह धनी लोगों के हर क्लब में जाता था, जहाँ खेल तमाशे होते थे। ह्विस्की के दौर चलते थे। कोई भी बिल अपनी जेब से अदा करने में राजा को एतराज़ न होता था। कौन सज्जन और सभ्य व्यक्ति इन क्लबों के जीवन पर गौरव अनुभव नहीं करेगा? वे क्लब नहीं थे। संस्कृति, उदारता और सौन्दर्योपासन की शिक्षा प्राप्त करने के बेहतरीन स्कूल थे।

ज़रा देखिये किस सलीके से परिचय हो रहा है। कितने मीठे बोल हैं—"आप हैं राय बहादुर श्याम बिहारी लाल रईस। बिहार में आपकी सैकड़ों बीघे ज़मीन है। सब लोग आपकी सज्जनता और योग्यता का लोहा मानते हैं। और. आप हैं श्रीमती श्यामबिहारी लाल। बड़ी योग्य महिला हैं। आपको सङ्गीत से विशेष प्रेम है।"

यहाँ औरतों को मर्दों के बराबर दर्जा प्राप्त है। कोई मर्द जिस औरत से चाहे बात कर सकता है। कोई औरत जिस मर्द के पहलू में चाहे जाकर बैठ जाती है। यह लोग औरत का कितना सम्मान करते हैं। वे चाहते हैं कि सारा हिन्दुस्तान एक विस्तृत क्लब में बदल हो जाये। और औरत अपनी दीन स्थिति से उभरे।

इन क्लबों में राजा धर्मपाल सिंह शराब भी खूब पीता था। और परेल भी खूब खेलता था। फिर भी उसकी जेबें भरी रहती थीं। लेकिन उसे एक अभाव हमेशा खटकता था। आमतौर पर हर एक मेम्बर के साथ एक श्रीमती होती थी और जो मेम्बर बिना श्रीमती के आता था वह अपने आप को किसी भी श्रीमती के योग्य बना सकता था।

यहाँ आकर राजा धर्मपाल सिंह का सिक्का हमेशा खोटा सिद्ध होता था। इसकी उम्र अधिक थी। जवानी ढल चुकी थी। यहाँ जो महिलायें आती थीं, वह खूब चतुर होती थीं। उनकी पैनी दृष्टि हज़ार मर्दों में अपना साथी ढूँढ़ लेती थीं।

जब राजा धर्मपालसिंह जैसा आदमी इन क्लबों में आता है तो वह अपने साथ ऐसी श्रीमती लाता है जो हरएक मर्द से मेल जोल पैदा कर सके।

इन क्लबों में राजा के लिये सावित्री का साथ गर्व का कारण था। वह अभी तक नहीं आई थी। राजा इन क्लबों के आनन्द से वंचित हो रहा था। उम्री बाई काफी होशियार थी। उससे काम चल सकता था। लेकिन इसमें मान हानि का भय था। कुछ अरसा पहले कटभंगा के राजा को क्षमा माँगनी पड़ी थी क्योंकि वह एक रंडी को अपने साथ लाता था। भद्र और प्रतिष्ठित मेम्बरों का इस बात का पता चल गया और उन्होंने जबरदस्त विरोध किया।

राजा धर्मपाल सिंह एक पेशोवर औरत को साथ ले जाकर मर्यादा का उलंघन नहीं करना चाहते थे। उन्होंने सावित्री को बुला भेजा था।

[७]

सरदार लाला ओंकारदास राजा के प्राइवेट सैक्रेटरी थे। राजा धर्मपालसिंह उनके काम से बहुत प्रसन्न थे। इसीलिए उन्हें अपनी एक वर्षगाँठ पर सरदार का खिताब दिया था। राजदरबार ही में नहीं लोगो में भी उसका बड़ा रंग था। शाम को जब पाँच सात दुकानदार काम से निबटकर कहीं मिल बैठते तो उन्हीं की बात चल निकलती। "बड़े भाग्यशाली मनुष्य हैं। उनके पिता

लाला गोविन्दराम महसूल चुंगी में मामूली क्लर्क थे। बारह रुपये महीने तनखाह मिलती थी। इन्होंने हमारे देखते देखते इतनी तरक्की की। कुल दसवाँ पास किया। मामूली क्लर्क भर्ती हुए और थोड़े ही दिनों में इस रुतबे पर पहुँच गये। और फिर लुत्फ़ यह है कि तबीयत में जरा फ़र्क नहीं आया। उसी तरह नम्रता से मिलते हैं।

बिरादरी का कोई आदमी जाकर कह दो लालाजी मुझे फलाँ तकलीफ है। जब तक उसका काम न कर देंगे चैन नहीं लेंगे। बड़े ही नेक आदमी हैं। देवता हैं देवता। भगवान भाग्य भी तो ऐसे ही आदमी का चमकाता है। आज किसी बात की कमी नहीं, प्रधान मंत्री तक ताबेदारी करते हैं। राजा का तो एक बहाना है। राज ओंकार बाबू करते हैं।

हिन्दुस्तान पर किसी हिन्दुस्तानी के राज की बात तो सपना बन चुकी है। हाँ बड़े प्रधान मन्त्री की ताबेदारी बहुत अंश में दुरुस्त थी। प्रधान मन्त्री सर पी० एन० मेहता थे। दो साल पहले रियासत का कोई आदमी उनका नाम तक भी नहीं जानता था।

पहले प्रधान मन्त्री के मरते ही वह अचानक आ टपके और प्रधान मन्त्री बन गये। यहाँ आने से पहले वह अङ्गरेजी इलाक़े में कोई बड़े अफसर थे।

जानकार लोगों का कहना है कि अङ्गरेजों ने उन्हें खुद भेजा था। ताकि रियासत के भीतरी मामलों का पता चलता रहे। लेकिन जन साधारण की राय थी कि उनकी क़िस्मत उन्हें यहाँ

ले आई थी । उनके आने पर काफी खींचातानी हुई थी । रियासत के सब से बड़े नीतिज्ञ और पुराने अहलकार पंडित मूलराज का आग्रह था कि प्रधान मन्त्री रियासत के किसी वाशिंदे को बनाया जाय । बाहर से आदमी मंगवाने में रियासत पर अनुचित बोझ पड़ता है । प्रजा का अधिकार छिनता है ।

लाला ओंकारदास खूब समझते थे कि पंडित मूलराज ने प्रजा के अधिकारों की कभी परवाह नहीं की । वे उन्हें खुद कुचलव आये हैं । अब वह अधिकारों की रट इसलिए लगा रहे हैं कि वे प्रधान मन्त्री के पद पर स्वयं विराजना चाहते हैं । उन्होंने पंडित मूलराज की एक न चलने दी । सर पी० एन० मेहता को सफल बनाकर दम लिया । क्योंकि वह योग्य और अनुभवी मनुष्य थे । रियासत को उनसे बहुत कुछ लाभ पहुँचने की आशा थी ।

लाला ओंकारदास का विचार दुरुस्त निकला । सर पी० एन० मेहता ने इस पद पर आरूढ़ होते ही भिन्न भिन्न महकमों में बड़ी बड़ी तब्दीलियाँ कीं । नया इनकम टैक्स अफसर बाहर से बुलाया । वह बड़ा ही ईमानदार और मेहनती आदमी था । किसी का पक्षपात नहीं करता था किसी से रिश्वत नहीं लेता था । इसका प्रमाण यह था कि उसके आते ही रियासत की आमदनी ड्योढ़ी हो गई ।

चार्ज लेते ही मालूम हो गया था कि पहला इनकम टैक्स अफसर अपने स्वार्थ पर रियासत के हित को बलिदान करता रहा

है । लोग उसके घर डालियाँ देते थे और वह प्रसन्न रहता था। लेकिन उसने यह नहीं सोचा कि जो लोग मुझे डालियाँ दे सकते हैं वे रियासत को अधिक टैक्स क्यों नहीं दे सकते ? अब उसने एक हज़ार के बजाय सौ रुपये की आमदनी पर टैक्स लगा दिया, मालिया सवाया हो गया और महसूल चुंगी बढ़ा दिया गया।

जब आमदनी का सिलसिला निकल आया तो सर मेहता ने दूसरे महकमों की ओर ध्यान दिया। पहले रियासत में दो नाज़िम होते थे अब पाँच कर दिये ताकि लोगों को इंसाफ़ मिलने लगे। रियासत के बाशिंदों के अधिकार वैसे ही सुरक्षित रहने दिये। जो तीन नई असामियाँ बनाई थीं उनपर अङ्गरेज़ी इलाक़े से योग्य व्यक्ति बुलाकर नियुक्त किये।

अपनी केबिनेट विस्तृत कर दी। पहले तीन मंत्री होते थे, अब उनकी तादाद बारह कर दी गई ताकि किसी को यह शिकायत न रहे कि रियासत का प्रबन्ध उचित रीति से नहीं हो रहा है। एक नया मंत्री बाहर से आया जो बड़ा ही योग्य था।

मेहता के कारनामों की कहानी बहुत लम्बी है। अगर कभी रियासत का इतिहास लिखा जायेगा तो उसमें सर मेहता का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। लेकिन लाला ओंकारदास का कहीं ज़िक्र भी न होगा जिन्होंने उन्हें बड़ा मंत्री बनाया। जिनका सहयोग उन्हें हमेशा प्राप्त रहा। उनके मस्तिष्क में कोई योजना होती तो वह उसे लेकर लाला ओंकारदास के पास दौड़े आते। उनको विश्वास में लेने के बाद राजा की स्वीकृति प्राप्त कर लेना

मामूली बात थी । अब उनके सामने एक नई योजना यह थी। कि हाईकोर्ट के सब फ़ैसले होने में असाधारण देर हो जाती है। अगर एक और आदमी बाहर से मंगवा लिया जाय तो एक तो फ़ैसले शीघ्र हो जाया करेंगे और दूसरे दो आदमियों के होने से किसी निर्दोष को दंड नहीं मिलेगा और किसी अपराधी का पक्षपात नहीं होगा । वह यही योजना लेकर श्रीनगर आये थे और लाला ओंकार दास से मशविरा कर रहे थे।

"पंडित मूलराज क्या सब मेम्बर इस बात पर सहमत हैं। देखिये केबिनेट ने यह प्रस्ताव पास किया है।" सर मेहता ने उनके एक एतराज का जवाब देते हुए कहा और प्रस्ताव दिखाया।

"यह सब दुरुस्त है।" ओंकारदास ने कहा, "लेकिन केबिनेट भी तो लोगों की प्रतिनिधि नहीं। राजा के नाम बेशुमार गुमनाम चिट्ठियाँ आती हैं कि बाहर से लोग लाकर हम पर ठूँसे जा रहे हैं। रियासत लुट रही है।"

"आप तो बड़े अनुभवी और बुद्धिमान हैं। मैं केबिनेट के बाहर आदमियों की सम्मति को इतना मान नहीं देता जितना आपकी अकेली राय को। मेरे आने पर भी तो बहुत शोर मचा था, पर वह आप ही आप दब गया। जब आप मेरे साथ हैं तो इन चिट्ठियों का मूल्य क्या है ? फिर आपकी वह बात मैं कभी नहीं भूलता कि जब तक लोगों में कोई बात खुल्लम खुल्ला कहने का साहस उत्पन्न नहीं होता, जब तक वे संगठित नहीं हो जाते वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

सर मेहता की बातों में चापलूसी की मिठास और व्यक्तिगत प्रशंसा का नशा था। लाला ओंकारदास मन ही में प्रसन्न हुए और मुस्कराकर बोले, "लेकिन अब तो खुल्लम खुल्ला भी कहने लगे हैं और सुना है कि पंडित मूलराज उन्हें उभार रहे हैं।"

"क्षमा कीजिये, पंडित मूलराज पर यों ही आपका संदेह रहता है। वह उभरने वाला आदमी ही नहीं। पूरा राजभक्त है। सोलह आने ईमानदार है। सत्ता प्राप्त करने के लिये हाथ पाँव ज़रूर मारता है। लेकिन जब काम नहीं बनता तो जिसके हाथ में सत्ता होती है उसी का बन जाता है।"

"मुफ़्त में थोड़े ही बन जाता है। उसकी क़ीमत लेता है।"

"क़ीमत क्या है? तनख़्वाह में सौ सवा सौ का इज़ाफ़ा कर दिया। दो चार रिश्तेदारों को नौकरी दिला दी।"

"आप सोचिये, हमारी जेब से क्या निकलता है? फिर इस कीमत पर मँहगा नहीं। कमबख्त सब सिलसिले गाँठ लेता है, सिखों के आंदोलन को असफल बनाना उसी का काम था। अब लोगों ने लोक-सभा स्थापित की है। उसने पहले ही से पेशबन्दियाँ शुरू कर दीं। लाला मनोहर लाल ऐडवोकेट प्रधान बना हुआ है। राजा की वफ़ादारी और बधाइयों के प्रस्ताव पास हो रहे हैं।

"आप तारीफ़ भी तो कर रहे हैं। सिक्का भी तो उसी का चलता है"

"सिक्का क्या खाक़ चलेगा? सूरज के नीचे दिया कभी जला करता है? वह डाल डाल हैं तो आप पात पात हैं। आप ने उसे

पेन्शन देकर रिटायर भी कर दिया और एहसान जताने के लिये उसे केबिनेट में रख भी लिया। अब उसकी हैसियत क्या है? जब चाहो कान पकड़ कर बाहर निकाल दो।"

कान पकड़ कर निकालने की बात सुन कर लाला ओंकारदास इतने प्रसन्न हुये कि उनके लिये हँसी ज़ब्त करना मुश्किल हो गया। उन्हें हँसता देख कर सर पी० एन० मेहता फिर बोले, "आप बड़े चतुर हैं। काम के आदमी को हाथ से खोना भी नहीं चाहते।"

"हाँ, यही तो राजनीति है। जो गुड़ देने से मर जाय उसे विष देना फ़िजूल है।"

"बिल्कुल ठीक है। आप की बात पत्थर की लकीर है। यही कारण है कि मैं जब से आया हूँ आपकी सलाह पर चलता हूँ। अब हर एक मुहकमा हमारे अपने आदमी के मातहत है। किसी को चूँ तक करने की मजाल नहीं।"

"देखिये अब क्या होता है? आप को चार साल के लिये बुलाया गया था। अब तमाम उम्र चैन से रहिये। आप की तरफ़ कोई आँख उठा कर भी नहीं देख सकेगा।"

सर पी. एन. मेहता जब कोई नई योजना लेकर आते थे तो उन्हें सरदार लाला ओंकार दास के साथ इसी प्रकार की बातचीत करनी पड़ती थी। जब वह उनके मुँह से "अब आप रियासत में उम्र भर चैन से रहिये" सुन लेते थे तो उन्हें अपनी योजना पर राजा के हस्ताक्षर हो जाने का विश्वास हो जाता था। इसके बाद इधर उधर की बातें शुरू हो जातीं। उस दिन सर पी.

एन. मेहता ने बात चीत का विषय बदल कर कहा, "सुनाइये, मिस सावित्री के बारे में आप की राय क्या है ?"

लाला ओंकार दास असमंजस में पड़ गये। सावित्री के बारे में उन्होंने अभी तक कोई राय क़ायम नहीं की थी। जिस औरत को राजा पसन्द करता था वह उन्हें भी पसन्द होती थी। जब कभी सावित्री के निकट बैठने का अवसर मिलता था उनके शरीर में ऐंठन होने लगती थी। वे भूखो और याचक दृष्टि से उसकी ओर देखा करते थे। लेकिन सावित्री ने उनको देखने की कभी परवाह नहीं की। जैसे उसकी निगाह में उनके व्यक्तित्व का कोई महत्त्व ही न हो। उन्हें यह बात खलती अवश्य थी। पर राजा सावित्री को बहुत चाहता था। शतरंज में और क्लब में हर जगह उसकी जरूरत महसूस करता था। सरदार लाला ओंकार दास की राजभक्ति का तक़ाज़ा था कि राजा की जरूरत का ध्यान रखते हुये सावित्री के प्रति अपने मन में किसी प्रकार का द्वेष और मैल उत्पन्न न होने दें। आज जब उन्हें अपनी राय प्रकट करनी पड़ी तो वैसे ही बोले, "सुन्दर और चतुर है।"

"यह तो ठीक है। सियासत वियासत से तो कोई ताल्लुक़ नहीं रखती ?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।" लाला ओंकारदास ने दृढ़ विश्वास से कहा। लेकिन इस उत्तर पर सर पी. एन. मेहता ने किसी प्रकार की प्रसन्नता प्रकट नहीं की। मेहता की उदासीनता के कारण उन्हें अन्दाज़ा ग़लत होने का संदेह हुआ। इसलिये बात

बदलकर फिर बोले, "वैसे सदाचार का भी सियासत पर असर पड़ता है।"

"पड़ता क्यों नहीं साहब। सदाचार की दुर्बलताओं ने मुग़ल राज्य को नष्ट कर दिया।"

"महाराजा साहब ने तो स्याह और सफ़ेद हम लोगों के सुपुर्द कर रखा है। यह देखना हमारा काम है कि किस बात में उनकी बदनामी है और किस बात में नेकनामी।"

"आपका मतलब है कि उसकी मौजूदगी रियासत के लिये बदनामी का कारण है।"

"बेशक।"

सरदार ओंकारदास ने समर्थन किया और दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। आँखों ही आँखों में विचार विनिमय हुआ। फिर वे एक साथ एक ही निर्णय पर पहुँचकर मुस्कराये।

अगले दिन लाला ओंकारदास प्रातःकाल सैर को निकले तो रास्ते में सावित्री मिल गई। उसने रेशम की सफ़ेद साड़ी और रेशम का सफ़ेद जम्पर पहन रखा था। उसके कानों में टाप्स थे जिनमें मोतियों की सफ़ेद लड़ियाँ गोरी चिट्टी सफ़ेद गर्दन पर लटक रही थीं। इस सफ़ेद लिबास में वह बिलकुल सफ़ेद परी मालूम होती थी।

लाला ओंकारदास अकसर सैर को आते थे। मगर सैर के समय भी उनके दिमाग़ में रियासती मामले ही घूमा करते थे। दरिया, पहाड़, पहाड़ों पर चमकती हुई बर्फ़ और झुके हुए बादल

उनको आकर्षित करते थे।

कल प्रधान मंत्री से जो बातें हुई थीं उनके मस्तिष्क में इस समय वही घूम रही थीं। वे उनसे अपनी तारीफ़ का अंश निकाल कर मन ही मन में प्रसन्न हो रहे थे। वाह्य वातावरण से उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी।

मगर सावित्री को देखकर वे विस्मित और अवाक् हो गये। उसे देखकर अकसर लोगों की यही अवस्था होती थी। उनके लिये बर्फ़ में कोई आकर्षण न था। लेकिन बर्फ़ की यह बेटी—सफ़ेद परी—उनके मन और मस्तिष्क पर छा गई थी। वह सब कुछ भूलकर सारा ध्यान उसी में केन्द्रित कर देते थे।

परन्तु सावित्री का ध्यान उनकी ओर नहीं था। उसकी निगाहें दूर और नजदीक तेजी से घूम रही थीं। पहाड़, बादल, झरने शिकार, विशाल आकाश, वह सब कुछ देख रही थी; अथवा कुछ भी नहीं देख रही थी। लाला ओंकारदास ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहा।

"आप सैर तो नित्य करती हैं?"

"जी हाँ घूमने आ जाती हूँ। वर्ना जो आनन्द घोड़े की सवारी में है, वह इस घूमने में कहाँ!"

"आपको घोड़े की सवारी का बहुत शौक़ है?" लालाजी ने अपनी ज़ुबान में मिठास भरकर कहा।

लेकिन सावित्री की निगाहें दूर घूम रही थीं। वे पहाड़ की गोद से उठते हुये एक बादल को देख रही थीं। कौन जाने कि

उसने यह वाक्य सुना भी अथवा नहीं। एक क्षण ख़ामोशी में बीता। सावित्री की निगाहें वापस लौटीं। लाला जी फिर बोले, "घोड़ा जानवरों में सबसे समझदार जानवर है।"

"जानवरों से ही क्यों? कुछ आदमियों से भी समझदार है।" सावित्री मुस्कराई। लाला जी ने अट्टहास किया। वह समझ नहीं सके कि सावित्री की चोट कहाँ पड़ी है।

"समझदार है तभी तो पहाड़ पर इतनी तेज़ी से दौड़ सकता है। अगर पाँव ज़रा इधर उधर हो जाय तो न घोड़े का पता चले और न सवार का।"

"बेशक। बड़ी होशियारी से चलता है।" लालाजी ने समर्थन किया और बात को तूल दिया, "धूर्त इतना है कि ठीक खंदक के किनारे किनारे चलता है। आम सड़क के बीच लाने की लाख कोशिश करें, कभी नहीं आयेगा। ठीक किनारे पर दौड़ेगा। जब कभी चढ़ने का मौक़ा पड़ता है भय के मारे मेरे तो प्राण सूख जाते हैं।"

सावित्री ने लालाजी की ओर देखा जैसे कह रही हो, "मुझे आपसे बड़ी सहानुभूति है।"

लालाजी चाहते थे कि वह किसी सूरत से उनकी ओर देखे और वह देख रही थी। उसकी सुन्दर आँखों ने उनके मन में कवि के कोमल भाव उत्पन्न कर दिये और वह मुस्करा कर बोले, "काश्मीर भी स्वर्ग से कम नहीं।"

इससे पहले कि सावित्री की निगाहें दूर घूम जातीं लाल

आठ वर्ष का एक लड़का दौड़ता हुआ वहाँ आया। उसने अपने मैले कमीज़ का बिना बटन का गला एक हाथ में पकड़ रखा था। उसने दूसरा हाथ फैलाया और गिड़गिड़ा कर कहा, "बाबू जी बख़शीश! बीबीजी बख़शीश!!"

सावित्री ने सिर से पाँव तक लड़के को देखा और वह लालाजी की ओर देखकर व्यंग से मुसकराई। लालाजी उसका मतलब यही समझे कि वह लड़के को कुछ देने के लिये कह रही है। लेकिन उस समय उनकी जेब में कुछ नहीं था। वे अप्रतिभ से इधर उधर ताकने लगे।

सावित्री ने अपना बटुवा निकाला और एक रुपया लड़के के हाथ पर रख दिया। उसने ज़ोर से मुट्ठी भींच ली। शायद वह विश्वास करना चाहता था कि यह वाक़ई रुपया है और उसका ही है। इस रुपये में कितनी गर्मी थी! वह उलटे पाँव भाग खड़ा हुआ। अब वह पहले से भी तेज़ भाग रहा था। जैसे वह रुपया छीनकर लाया हो, जैसे सावित्री ने ग़लती से दिया हो और कहीं वह वापस न माँग ले।

सावित्री भागते हुए लड़के को देखती रही। जब वह अदृश्य होगया तब भी उसी दिशा में देखती रही। जैसे वह शून्य में कुछ ढूँढ़ रही हो।

"बहुत देर होगई, वापस चलें।"

"अच्छा, आपको जल्द लौटना है तो लौटिये। मुझे तो अभी दूर जाना है।"

अगर सावित्री जवाब का इंतज़ार करती, ज़रा मुस्कराती तो कह देते, "ख़ैर यों तो कोई जल्दी नहीं है। मैं भी आपके साथ चलता हूँ।" लेकिन उसने उनकी बात ही नहीं सुनी। वह अपनी ही कहकर आगे बढ़ गई। लालाजी हसरत भरी निगाहों से उसकी ओर देखते रहे। उनके दिल को धक्का सा लगा। जैसे सावित्री ने उन्हें किसी वस्तु से वंचित कर दिया हो। जैसे, वह कुछ माँगते हुये उसके पीछे पीछे दौड़ते आये हों। उसने उस लड़के को तो बख़शीश दी लेकिन उन्हें ख़ाली हाथ लौटा दिया, बिना भीख दिये।

[८]

"यह नया सिपाही क्यों आया है? क्या उसे बदल दिया गया है?"

"मुझे तो मालूम नहीं।"

"पता लगाओ यह काम कौन करता है?"

"ड्योढ़ी सरदार।"

"अगर बदल दिया हो तो उससे कहना कि दवा लानी होती है। नये आदमी से काम नहीं चलेगा।"

एक दिन कर्नैल के बजाय कोई बूढ़ा सिपाही ड्योढ़ी पर आ गया था। उसे देखकर तारो को बड़ा खेद हुआ। वह उससे कोई काम कहना चाहती थी। लेकिन बिना कहे ही लौटा दिया और अन्दर जाकर नैना से यह बात कही। तारो यद्यपि गम्भीर बनी रहती थी मगर नैना उसके मन की बात ख़ूब

समझती थी। लेकिन आज तो उसने रहस्य को आप ही प्रकट कर दिया था। वह अब दवा नहीं पीती थी फिर भी दवा लाने का बहाना क्यों ? नये आदमी को कोई काम करने के लिये नहीं कहा फिर भी काम न चलने की दुहाई क्यों ?

नैना ने तारो के रहस्य को अपने ही तक सीमित रखा। उसने ड्योढ़ी सरदार को यह संदेशा नहीं पहुँचाया। उसे वैसे ही मालूम हो गया कि कर्नैल को तब्दील नहीं किया गया। वह दो दिन की छुट्टी लेकर गया है। उसके बाद तारो ने कुछ दरियाफ़्त नहीं किया। काम पहले की तरह चलता रहा। किसी चीज़ की कमी नहीं हुई। लेकिन तारो अधीर रहती थी। उसके मन की शान्ति नष्ट होगई।

कर्नैल लौटा तो धैर्य और सुख भी लौट आया। वह फिर सोचने लगी कि दूसरे आदमी से भी काम चल सकता है। अगर कर्नैल चला भी जाय तो क्या है। उसने अब नैना से पूछा, "तुमने ड्योढ़ी सरदार से क्या कहा था ?"

"कुछ भी नहीं। मुझे तो वैसे ही मालूम होगया था कि वह छुट्टी पर गया है।"

तारो फिर वातावरण में खो गई। मौसम बदल रहा था। तेज़ धूप और लू ख़त्म हो चुकी थी। सावन का आरम्भ था। सर्द हवायें चलने लगी थीं। कभी कभी बादल भी उमड़ आते थे। बरसने के सामान पैदा हो रहे थे। सुबह की सैर में तारो को अब अधिक आनन्द मिलता था। वह बाग़ के कोने कोने से

परिचित हो गई थी। वह हर एक चीज़ को ध्यान से देखती थी।

महल के बाहर लम्बा चौड़ा चबूतरा था। चबूतरे के पास छोटी सी फ़सील थी। बिल्लौरी पत्थर का एक दरवाज़ा था जिस के दोनों तरफ़ काली वरदी पहने काले चेहरों वाले द्वारपाल खड़े थे। उनके सिर पर सींग थे। हाथों में मशालें थीं। दानव जैसे बड़े बड़े क़द थे। डरावनी शक्लें थीं। वे रोमन सिपाही थे। तारो को वे नहीं भाते थे। उन्हें देखकर पुरानेपन का एहसास होता था। राजा की याद आती थी; राजा की जिसे वह अपने मन से निकाल चुकी थी। वह द्वारपालों की इन प्रतिमाओं को तोड़ देना चाहती थी।

मालिन का बच्चा डेढ़ महीने का हो गया था। तारो जब बाग़ में घूमा करती तो वह बच्चे को गोद में उठाये पास से गुज़रती। वह कितनी खुश होती थी। उसकी ममता फूली न समाती थी। तारो को बालक पर प्यार आ जाता। वह रानी होते हुये भी मालिन के बच्चे को गोद में उठा लेती। उसे छाती से चिपटा लेती; तारो को अपनी छाती में दूध उमड़ता अनुभव होता।

"तुम्हें भी चाहिये लड़का ?" सावित्री ने उससे पूछा था।

सावित्री का यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में रह रह कर उभर आता। उसने इनकार नहीं किया था। वह अब भी इनकार नहीं करती। पहले इस प्रश्न से कुछ उलझन पैदा हुई थी। अब वह भी नहीं होती। मन में गुदगुदी सी उठती है। बच्चे पर प्यार आता है। सावित्री पर प्यार आता है। वह पूछ रही है—

"तुम्हें भी चाहिये लड़का ?" "हाँ मुझे चाहिये लड़का। मुझे लड़का चाहिये।" क्यों छिपाये एक सखी से वह मन का अरमान! "लेकिन वह लड़का राजा का न हो। नः नः राजा का न हो। राजा से कुछ न कहियो बहन! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।"

गाँव से ख़बर आई थी कि तेजो के लड़का हुआ है। तब उसने सोचा था कि अगर मेरे भी लड़का होता? सबके बालक हैं। सब के पति हैं और सब प्रसन्न हैं। तारो का मन नाना प्रकार की स्मृतियों से भर जाता।

तीजन के दिन समीप आ रहे हैं। लड़कियाँ गाँव आई हैं और बिछुड़ी हुई सहेलियों से मिलती हैं। तेजो भी आई होगी। तारो की विवशता सिहर उठती। उसके मन में बार बार विचार उठता कि वह भी गाँव में जाय और नन्हे भानजे के लिये कंगन बना कर ले जाय। तेजो बच्चे के हाथों में सहेली की यह सौगात देख कर कितनी प्रसन्न होगी।

तारो का अपना हृदय उल्लास से भर जाता। लेकिन गाँव जाने की हसरत अपूर्ण ही रही, वह राजा की रानी थी, मामूली देहाती औरत नहीं कि जहाँ चाहे चली जाय। वह राजा की है और राजा की बन कर महल में रहेगी। तारो के भाई का ब्याह हुआ उसमें तो वह जा नहीं सकी। फिर तीजन में उसे कौन जाने देता?

महलों का क़ानून जेल के क़ानून से भी कड़ा है। क़ैदी

अपनी सज़ा काट कर घर जा सकता है। लेकिन जो लड़की एक बार राजा की रानी बन गई वह फिर आजीवन माँ बाप के पास नहीं जा सकती। यह क़ानून था। हर एक क़ानून मानव हित के लिये बना है। वह उसका सुधार और रक्षा करता है। महलों के इस क़ानून में भी कोई न कोई हित निहित था जिसे समझना कठिन था।

जैसे जैसे सावन आगे बढ़ता रहा, घटाओं का रंग गहरा होता गया। दिन रात मेंह बरसता, मेंडक टर्राते, और पपीहे बोलते। हर तरफ जल ही जल था; फुहार का दृश्य कितना मनोहर था।

आख़िर तीजन का आरम्भ भी हुआ। तारो मन ही मन में सोचती : सखियों ने हाथों में मेंहदी रचाई है। तीजन के स्वागत में उनके चेहरे गुलाब से खिल गये हैं। गाँव से बाहर कीकर पर झूले पड़े हैं। तेजो, काकी और बनतो······पेंगें चढ़ा रही हैं। ओहो, कितनी ऊँची चढ़ी है उनकी पेंग। उस ऊँची चोटी की फुनगनी को छू रही है।

तारो का दिल बल्लियों उछलने लगता।

वह फिर सोचती। अब गिद्धा आरम्भ हुआ है। सब मिल कर गा रही हैं। नाच रही है। वह कितना अच्छा नाचती है। कैसा अच्छा गाती है। उसके गले में लोच है। ज़बान में रस है। वह गा रही है :

"तेरी हिक्क ते आह्लना पाया नी सब्ज़ कबूतर ने।"*

सब्ज़ कबूतर के घोंसले में कितना रोमांच भरा है। तारो का अंग अंग सिहर उठता। रग रग में स्पंदन हो जाता। सुरभित मौसम की नाई उसकी भावनाओं पर कोमलता छा जाती। वह अतीत और वर्तमान की सीमाओं को लांघ कर नित्यता में खो जाती। उसके होठों पर फुहार की भाँति हल्की हल्की मुस्कराहट फैल जाती।

ओस वृक्ष को जीवित नहीं रखती। पेड़ों में फलने फूलने और गर्मी सर्दी सहन करने की जो शक्ति है वह उन जड़ों के द्वारा प्राप्त होती है जो पृथ्वी में दूर तक फैली हुई हैं। तारो भी अगर अब तक जीवित थी तो उन आभूषणों और ऐश्वर्य के कारण नहीं जो उसे रानी बन कर प्राप्त हुआ था, बल्कि उस गाँव के सहारे जहाँ से उसे ज़िंदगी मिली थी, जहाँ उसकी जड़ें गड़ी थीं। दुख, तकलीफ़ और विवशता के इन दिनों में गाँव की याद ही उसके लिये सहारा थी। आज की याद पहले की सब यादों से अधिक रसीली थी। बहुत सी प्रसन्नताओं का समन्वय थी। रोमाँचकारी वातावरण कल्पना-पट पर उभर आया था। इस वातावरण में कीकर का वह पुराना वृक्ष जिसके नीचे प्रतिवर्ष तीजन का मेला लगता था दूर दूर तक फैला हुआ था।

उसने जब से होश सम्भाला था इस कीकर को देखना शुरू किया था। वह कब से वहाँ खड़ा था यह उसे मालूम नहीं था।

* तेरी छाती पर सब्ज़ कबूतर ने घोंसला बना रखा है।

उसकी मा और दादी जब से ब्याह कर आई थीं उन्होंने इस कीकर के नीचे सावन की बहारें देखी थीं। इस कीकर का इतिहास बहुत पुराना था—गाँव से भी पुराना।

आदमी का जन्म होने से पहले ही कीकर धरती पर मौजूद था। गाँव की लड़कियाँ जन्म जन्म से इसकी छाया में खेलती, झूलती, नाचती और गाती आई हैं। उनका यह नाचना और गाना उस समय तक जारी रहता है जब तक कि वह जवान होकर अपने माही के संग गाँव से विदा हो कर नहीं चली जातीं। चले जाने के बाद भी वह इसी वृक्ष के नीचे अपनी बिछुड़ी हुई सहेलियों से मुलाकातें करती हैं। सुसराल में जब ननद, भावज और सास के ताने उनके हृदयों को छलनी कर देते हैं इस कीकर की सुखदस्मृति दुखते हुये घावों के लिये मरहम जुटाती है और यही स्मृति वृद्धावस्था में जब समस्त अंग शिथिल पड़ जाते हैं उनकी सूखी रगों में जवानी का खून दौड़ाती है; जैसे उनका जीवन इस वृक्ष ही का एक अंग हो। वे पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण कहीं भी चली जाँय उसकी फैली हुई भुजायें उन्हें अपनी परछाईं से वंचित नहीं करती। उसके असंख्य पत्ते ओस और किरणों से जो शीतलता और चमक प्राप्त करते हैं उसका हिस्सा उन तक भी पहुँचा देते हैं। वृक्ष की दूर दूर तक फैली हुई जड़ें उनके लिये पृथ्वी के वक्षस्थल से रस खींचती हैं।

मनुष्य ज़ब अपने वातावरण में घुल जाता है तभी उसका जीवन, जीवन बनता है। तारो की आत्मा न केवल गाँव के

मनुष्यों, पशुओं और बेल बूटों में समाई हुई थी बल्कि वहाँ के कण कण में बास करती थी।

इस वृक्ष के निकट रेत के टीले थे। तारो की उनसे भी वही आत्मीयता थी जो इस वृक्ष से। जब रेत मेंह से भींग जाती थी वह हमउम्र लड़के लड़कियों के साथ वहाँ घरौंदे बनाया करती थी। उसने लगभग पाँच वर्ष की आयु से वहाँ खेलना आरम्भ किया था और ग्यारह वर्ष की उम्र तक खेलती रही थी। उन्हें इस खेल में वही आनन्द प्राप्त होता था जो बड़ी लड़कियों को पेगें चढ़ाकर माहिया* गाने में।

तारो घरौंदे बनाने में बड़ी निपुण भी। वह इतना गहरा खोदती थी कि सख्त से सख्त वर्षा के बावजूद सूखी रेत निकाल लेती थी। वह इस बात का ध्यान रखती थी कि ऊपर का भाग ढह न जाय। फिर उसमें कई दरवाजे बनाती। खोदी हुई गीली रेत से उनपर महरावें लगातीं और हर एक दरवाजे के सामने विशाल आँगन बनाती। फिर गीली रेत के बैल, गायें और भैंस बनाकर आँगन में बाँध देती। इसके पश्चात घर को सचमुच घर बनाने के लिये उसी रेत की बनी गुड़िया आँगन में बैठी दूध बलोती अथवा बच्चे को खेलाती और उसके घर वाला हल कंधे पर रख कर खेत को जाता। उनका घर कितना सुन्दर होता था। दूसरे लड़के और लड़कियाँ देखते और कहते, "काश! हमारे घर भी इतने ही सुन्दर होते।"

---

* देहात के प्रेम-गीत जो माही अर्थात प्रियतम से सम्बन्धित होते हैं।

इस घर का नक़्शा तारो के मस्तिष्क पर इतना २
पड़ा था कि दुनिया की कोई शक्ति उसे मिटा नहीं सकती थी
अगर राजा उसके उम्र का भी होता और वह
एकलौती रानी होती, राजा उसे खूब प्यार करता तब भी उ
दिल में एक वेदना ही रहती। उसकी आत्मा किसी अ
वस्तु के लिये तड़पा करती। उसे एक सब्ज़ कबूतर की तमन्ना
थी जो उसकी छाती पर घोंसला बनाता। वह दूध बलोती, बच्चे
को खेलाती और वह हल कंधे पर रखकर खेत को जाता।
अगर यह सब कुछ न होता तो उसे चाहे कैसा ही घर मिल जाता
उसके भीतर शून्य बना ही रहता।

यह शून्य बढ़ता, उसके भीतर फैलता चला जा रहा था।
इस याद ने बचपन, जवानी और ममता को एक साथ सजग कर
दिया था। वह एक अँगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुई; जैसे वह कुछ
करना चाहती हो। हाँ, वह कुछ करना चाहती थी। उसकी
रक्तरंजित आँखों में कोई दृढ़ निश्चय था। यह एक ऐसे मुसाफ़िर
का निश्चय था जो पर्वत की चोटी पर चढ़ने के लिए तैयार हो।
उसने बाहें ऊपर फैलाईं और उन्हें ज़ोर से झटका देते हुए बुलंद
आवाज़ में कहा, "मैं यहाँ पड़े पड़े कब तक सड़ती रहूँगी!"

डूबते हुये सूर्य्य की किरणें बादल पर प्रतिबिम्बित हो रही
थीं। एक साफ़ सुथरी और मनोहारी रेखा आकाश में दूर तक
फैलती चली गई थी जो तारो की भाषा में माँ बुढ़िया की पेंग
थी। इस समय वह स्वयं भी ऐसी ही सुन्दर पेंग में झूल रही थी।

नैना ने उसे शाम के खाने के लिए पुकारा। उसकी यह प्रेम मस्तिष्क के किसी कोने में उसी प्रकार छिप गई जिस प्रकार सूर्यास्त के साथ ही रेखा बादलों में लुप्त हो गई।

वह भोजन कर चुकी तो अँधकार फैल चुका था। आकाश पर अब भी मेघ घिरा था। दूर दूर तक नजर दौड़ाने पर भी कहीं कोई तारा दीख न पड़ता था। चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा था। हाँ, नीचे बागमें अनगिनित जुगनू चमक रहे थे। पृथ्वी के इन नन्हें तारों को बादल नहीं छिपाते। वे सावन की अँधेरी रातों में भी इसी प्रकार जगमगाते रहते हैं जिस प्रकार दुख के काले दिनों में भी मन के भीतर आशा के दीपक जगमगाया करते हैं।

तारो बड़ी देर तक इन जुगनुओं को देखती रही।

जब वह वापस आई तो नैना सब काम समाप्त करके अपनी चारपाई पर जा लेटी थी। तारो भी उसकी चारपाई पर जा बैठी और अपना सिर हठात उसकी छाती पर रख दिया। जैसे एक नन्हीं बालिका अपनी नानी या दादी से कहती है उसने नैना से कहा, "मुझे कोई कहानी सुनाओ।"

उसने कहानी सुनाने का यह तकाजा बहुत दिनों बाद किया था। वह ऐसी बात उसी समय करती थी जब उसे व्याकुल मन को बहलाना होता था। नैना ने उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरते हुये पूछा, "क्यों बेटी, क्या बात है ?"

"वैसे ही, कहानी सुनने को जी चाहता है।" तारो ने कहा और गर्दन ढीली छोड़कर अधिक बोझ उसकी छाती पर डाल

दिया ।

"पूर्व देश की एक राजकुमारी बहुत सुन्दर थी ।" नैना ने कहानी शुरू की । "उसकी सुन्दरता का चर्चा किसी दानव ने भी सुना । वह उसे उठा ले गया । राजकुमारी उसके महल में अकेली रहती थी । महल के बीस बीस मील तक जंगल था । दानव ने इन्सानों की सब बस्तियाँ उजाड़ दी थीं । वह दिन भर शिकार खेलता । शाम को थक कर घर लौटता और शराब पीकर सो रहता । उसके मारे राजकुमारी का जीना दूभर हो गया ।"

तारो की साँस तेज़ तेज़ चलने लगी । उसने अपने हाथों और शरीर को ऐसे हिलाया जैसे नैना से चिमट जाना चाहती हो । नैना ने उसकी कमर को थपथपाते हुए कहानी जारी रखी । "राजकुमारी सोचती कि अगर मेरे पर हों तो उड़कर महल से निकल जाऊँ । एक दिन कोई राजकुमार अचानक वहाँ आ गया ।"

तारो ने गर्दन ऊपर उठाई जैसे राजकुमार को देखना चाहती हो, जैसे उसके दिल का बोझ कुछ हल्का हो गया हो । नैना कहती गई, "राजकुमारी राजकुमार को देखते ही उस पर मोहित हो गई । फिर उसे दानव का ख़याल आ गया । उसने राजकुमार से उलटे पाँव लौट जाने की प्रार्थना की । राजकुमार दानव से डरा नहीं । उससे मुक़ाबिला करने की ठानी । दोनों ने मिलकर उसे मारने की तरकीब सोची । लड़ाई हुई । राजकुमार ने दानव को मार डाला और वह राजकुमारी को महल से निकाल कर अपने

साथ लेगया।"

तारो ने यह कहानी बचपन में भी सुनी थी। उस समय भी वह राजकुमारी के दानव के चंगुल से छूट जाने पर प्रसन्न हुई थी। लेकिन राजकुमारी को उसकी क़ैद में रहकर कितना कष्ट सहन करना पड़ा था इसका उसे आज ही अनुभव हुआ। बचपन में वह केवल प्रसन्न हुई थी, लेकिन आज उसे सान्त्वना मिली थी।

कहानी समाप्त हुई तो उसे सुख मिला। रानी की मुक्ति में उसे अपने आनन्द का अनुभव हुआ। वह आराम से अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई।

[९]

सोते सोते भी तारो इस कहानी का स्वप्न देखती रही। एक बार तो स्वप्न ने भयानक रूप धारण कर लिया। उसने देखा कि एक भीमकाय दानव ने उसे पकड़ रखा है। वह अपने आपको छुड़ाने की जितनी कोशिश करती है उतनी ही वह फँसती जा रही है। दानव की आँखों में पशुता और क्रूरता भरी थी। तारो भय के मारे काँपने लगी और वह सहायता के लिये चिल्लाई। मगर आवाज़ गले में अटक कर रह गई।

इतने में उसकी आँख खुल गई। दिन निकल आया था। किरणें बरामदे में आ रही थीं। चिड़ियों की छोटी छोटी टुकड़ियाँ इधर से उधर फुदकती फिरती थीं। तारो की आँखों में खुमार भरा था। सपने का आतङ्क दिमाग़ पर छाया था। उसका प्रभाव

क्षण क्षण दूर हो रहा था। सूर्य का प्रकाश और चिड़ियों की चूँ चूँ आत्मा में घुल रही थी। उसनें स्वस्थ अँगड़ाई ली और सपने की बात मन में दोहराने लगी।

दानव की शक्ल रोमन सिपाहियों से मिलती थी। वह काला कलूटा था। उसके सिर पर सींग थे। आँखों में पशुता और क्रूरता थी। राजा और कुत्ता रास्ता रोके खड़े थे। वह उनसे बच कर निकल गई। अगर राजा उसकी बाँह पकड़ता तो वह उसका हाथ झटक देती। अब वह दानव का हाथ झटक आई थी। उसके चगुल से निकल भागी थी। इस विचार से तारो मन ही मन में आश्वस्त हुई। उसका समस्त अस्तित्व उल्लास से भर गया। कहानी का नायक राजकुमार उसके मन में गुदगुदी पैदा कर रहा था। वह कुछ गुनगुनाती हुई उठ खड़ी हुई।

"माही आया। माही आया।" मधुर गीत गूँज उठा।

मैना के ये बोल तारो के लिए नये नहीं थे। वह दिन में बीसों बार उसे 'माही आया, माही आया,' पुकारते सुना करती थी। लेकिन उस बोली का उसपर क्या प्रभाव होता है यह उसके अपने मन की स्थिति पर निर्भर था। कभी उसमें रस होता था, कभी विषाद और कभी कुछ भी नहीं—पंछी के निरर्थक भाव-शून्य बोल ही तो। इस समय मैना की आवाज उसके अपने मन की आवाज थी। अपने होठों में वह माही का राग अलाप रही थी। वह दौड़कर पिंजड़े के पास चली गई और प्यार से बोली, "कहाँ आया है माही ?"

मैना ने उसे पुचकारते देखा तो और ऊंच स्वर में बोल उठी, "साही आया, साही आया !"

तारो ने ज़रा नजर घुमाई तो देखा सामने कर्नैल खड़ा था। मैना ने कल कर्नैल से कहा था कि सुबह छोटी रानी को कपड़े के थान लाकर दिखाना, कुछ सलवार सिलवाना है। तारो के पास कपड़ों की कमी न थी। अच्छी से अच्छी साड़ियाँ और अच्छे से अच्छे सलवार ट्रंकों में बन्द पड़े थे। वह उन्हें कभी न पहनती। मगर उसे ख़याल आया कि तीजन के त्यौहार पर सब लड़कियाँ नये कपड़े सिलाती हैं। यद्यपि तीजन का समय बीत चुका था फिर भी वह कपड़े बनवाना चाहती थी। उसे रीति निभानी थी।

कर्नैल कपड़ा पसन्द कराने वहाँ आया था। तारो ने कपड़े की ओर ध्यान दिये बिना ही कहा, "कर्नैल! सुनो तो, मैना कितना साफ़ बोलती है।"

"जी हाँ, सरकार! कर्नैल के मुँह से निकल गया।

वह आगे कहना चाहता था कि जितना साफ़ मैना बोलती है उतना तो आदमी भी नहीं बोल सकता। लेकिन तारो ने उसे टोक दिया 'यह सरकार क्या बला है?"

कर्नैल तारो के चेहरे का उतार चढ़ाव नहीं देख सका। वह क्षण भर दूर दूर शून्य में देखती रही। फिर कर्नैल की ओर मुख मोड़ा और हृदय की समस्त शक्ति से आदेश दिया, "मुझे तारो कहो।"

"अच्छा जी," कर्नैल की आँखें झुक गईं और वह अपने

जूते की नोक से ज़मीन कुरेदने लगा ।

"अच्छा जी !" तारो ने मुँह चिढ़ाया । उसकी छाती ज़ोर ज़ोर से धड़क रही थी । वह मैना की चोंच को दो उँगलियों में पकड़कर अनमनी सी टटोलने लगी । शायद वह उसे खोलना चाहती थी । लेकिन मैना कैसे समझती और कैसे कहती उसके मन की बात ?

आख़िर तारो ने ख़ुद कहने का निश्चय किया । वह एक क़दम आगे बढ़ी और तेज़ी से बोली, "कर्नैल, धरती में क्यों गड़ा जाता है ? इधर देख ।" उसकी आवाज़ स्पष्ट और दृढ़ थी । "मैं वही तारो हूँ जिस पर तुमने रंग का घड़ा उँड़ेल दिया था । मैं वही तारो हूँ जिसके बारे में तुमने सब लड़कियों से कहा था—'अगर मुझे तुम में से किसी एक के साथ ब्याह करना हो तो मैं इनके साथ करूँगा ।' उस समय मेरा कितना मज़ाक़ उड़ा था । मुझे झेंपती देखकर तुम भी हँस पड़े थे ।"

तारो का माथा पसीने से भींग गया ।

कर्नैल को ये सब बातें मालूम थीं । लेकिन वह उन्हें याद करने का भी साहस न कर सकता था । उन्हें हृदय की गहराइयों में छिपा लेना चाहता था । याद हो आने पर भी उन पर विस्मृति की चादर डाल देना चाहता था ।

तारो ने अकस्मात इस चादर को उठा दिया । उन्हें गहराइयों से बाहर निकाल दिया । उसने उन्हें इस अन्दाज़ से दोहराया कि उनके अर्थ में आकाश का विस्तार भर गया ।

कर्नैल चुप था, जैसे उसने ये बातें नहीं सुनी हों। वह चकपका गया था। जैसे अनहोनी को अपनी आँखों से होते देखा हो। उससे कुछ कहते न बन पड़ा। मंत्रमुग्ध सा तारो की ओर देखता रहा। उसके सामने सरकार नहीं सचमुच तारो खड़ी थी। काले काले बाल सुन्दर मुख पर बिखरे हुए थे। आँखों में विचित्र मस्ती भरी थी। शायद वह नींद का खुमार ही था।— हाँ, वह ख़ुमार ही था। तारो ने चारपाई से उठकर मुँह भी नहीं धोया था।

मगर इस ख़ुमार के पर्दे में दूर—बहुत दूर—उसे कुछ और भी दीख पड़ता था; एक नारी जिसकी खोज में पुरुष आदिकाल से भटकता रहा है, भटक रहा है और शायद भटकता रहेगा।

कर्नैल ने तारो की आँखों में आँखें डाल दीं। वह आँखों की राह हृदय-प्रदेश में उतर गया। वहाँ एक निष्कलङ्क रमणी चुप—बिलकुल चुप खड़ी थी। वह घायल थी, उसे दुलारने और मनाने की ज़रूरत थी।

बरबस ही कर्नैल की काँपती उँगलियाँ तारो के ओंठ पर जा पड़ीं। उसके होंठ काँपे, क्षीण काँपती आवाज़ उभरी, "तारो!"

"माही आया! माही आया!!" मैना चिल्ला उठी।

तारो का दिल ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। सारा शरीर गर्म हो गया। आँखों की डोरियाँ भीग गईं। उसके गाल लाल हो गये! सारी सृष्टि खिलखिला उठी। सूर्य्य की किरणें सब की-

चोटी से छन छनकर दोनों के चेहरों पर पड़ रही थीं। न कर्नैल सिपाही था, न तारा रानी। एक पुरुष था, दूसरी नारी। दोनों में प्राकृतिक सम्बन्ध था, दोनों में जन्मजात सम्बन्ध था।

वे एक दूसरे को देख रहे थे। उनकी निगाहों में गर्मी थी। उस गर्मी से कुहासे की दीवार हट गई, वे एक दूसरे को भली भाँति पहचान गये।

तारा जब से बीमार हुई थी, देखने को कर्नैल उसे हर रोज़ देखता था। लेकिन इतने क़रीब से और इस तरह से पहले कभी नहीं देखा था। पहले वह ऊँचे पर, बहुत ऊँचे पर खड़ी थी। कर्नैल इतनी बुलंदी पर झाँक भी नहीं सकता था। आज वह नीचे उतर आई थी। उसके साथ एक ही सतह पर खड़ी थी। यह परिस्थिति, यह दृश्य कितना उल्लास पूर्ण, कितना प्राणदायक था!

लेकिन यह सब कुछ निमिष मात्र में नहीं हुआ था। कर्नैल इसे नीचे उतरना समझता था। मगर तारा के लिये यह स्तर हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कैलाश से भी अधिक ऊँचा था। अगर यह काम इतना ही सहज होता तो वह इसे बहुत पहले कर गुज़रती। कल का वह ध्रुव निश्चय, मैना की कहानी, सपने का प्रभाव और मैना की पुकार भी उससे यह सब बातें कहलाने में असमर्थ रहती, अगर उसके पीछे बचपन और जवानी की रोमांचकारी कहानी न होती, अगर उसके मन में माही की चाह और प्रेम करने की तड़प न होती।

उस दिन कर्नैल से नाता जोड़ कर वह अपनी निगाहों में इतनी लज्जित हुई थी कि कल तक आँख ऊपर न उठा सकी थी। आज वही आँखें थीं, वही दिल था। लेकिन उनमें लज्जा और पछतावे के बजाय साहस और गौरव की अनुभूति थी।

उस समय वह बीमार थी। निर्बल थी। उसके भीतर एक भूख थी। इस भूख ने याचक की नाईं हाथ बढ़ाया था। याचकता हीन, दीन और मानरहित है। मगर आज उसके भीतर की नारी जाग उठी थी। वह अपने छिने हुये अधिकार प्राप्त करना चाहती थी। अधिकारों की प्राप्ति के लिये जो कोशिश की जाती है उसमें उत्साह और निर्भीकता होती है।

तारो आज बहुत निर्भीक थी। उसकी आँखों में पुनीत प्रतिभा चमक रही थी। होठों पर मुसकान थी। मुसकान में आकर्षण था। कर्नैल बिना झिझक उसके समीप आ सकता था। उसकी भावनाओं को समझ सकता था। उसकी बात सुन सकता था और अपनी कह सकता था। छिपने छिपाने की ज़रूरत नहीं थी। पर्दे उठ गये थे। दूरी मिट गई थी।

लेकिन कर्नैल जिस काम से आया था, उसका फ़ैसला होना अभी बाक़ी था।

"नौकर खड़े खड़े थक गया। रानी को फ़ुर्सत हो तो कपड़ा पसंद कर लें" वह बोला।

उसकी आँखों में विनोद भरा था। तारो ने उसे प्यार से देखा और फिर नज़ाकत से गर्दन मोड़ली।

'तीजन बीत गई तो अब कपड़ा आया है। ले जाओ हमें न चाहिये तुम्हारा कपड़ा।"

"इसमें दास का दोष क्या है ? सरकार ने कहा ही न था।"

"कह कर मगँवाया तो क्या मगँवाया ?" तारो और तन गई।

"इस बार माफी मिल जाय। आगे का हम ध्यान रखेंगे।" कर्नैल विनीत हो बोला।

"वादा करते हो ? आगे तो यह भूल नहीं होगी ?" तारो मुसकरा उठी।

कर्नैल चुप खड़ा उसे देखने लगा। उसका जी चाहता था कि देखता ही रहे और तारो मुसकराती ही रहे, उस पर अपना अधिकार जताती ही रहे।

"देखूँ कौन सा कपड़ा लाये हो।" तारो ने कहा।

"यह 'नयनसुख' है। यह 'दिल की प्यास' और यह......"

"मुझे तो 'दिल की प्यास' पसंद है।" तारो बोल उठी, "और तुम्हें ?"

"मुझे 'नयन सुख' अच्छा लगता है।"

"ठीक है, 'नयन सुख' और 'दिल की प्यास' दोनों के कपड़े बन जायें। जब तुम मेरे पास हुआ करोगे मैं 'नयन सुख' पहना करूँगी और जब अकेली रह जाया करूँगी तो 'दिल की प्यास।"

"बहुत अच्छा।"

कर्नैल ने यह "बहुत अच्छा" आँखें फैलाकर, मुस्कराते हुये ऐसे कहा मानो उसमें मानव हृदय का समस्त रस भरा हो। यह एक ऐसा संगीत था जिसे किसी गवैये ने इसके पहिले नहीं गाया था। कर्नैल चला गया। उसके ये शब्द वायु में तरंगित होते रहे। और तारो इस गीत के मधु में डूबी रही। उधर आम की डाली से कोयल बोल उठी—कूहू, कूहू!

तारो को उसका बोलना अच्छा नहीं लगा।

[१०]

दोनों कपड़े सिल कर आ गये। वह उन्हें पाकर इतनी प्रसन्न हुई की व्याह के दिन राजा के दिये रेशम और कमख्वाब के सूट देख कर भी नहीं हुई थी। प्रसन्नता का कारण यह नहीं था कि उसने खुद कह कर सादा कपड़े मँगवाये थे और वह उन्हें पहन कर देहाती लड़की दीख पड़ती थी, बल्कि इनकी पसन्द से प्रेम के जो क्षण सम्बन्धित थे वे उन्हें अनमोल बना देते थे। कौन वस्तु किस समय अतुल मान प्राप्त कर लेती है और कौन किस समय नज़रों से गिर जाती है, यह फ़ैसला करना बहुत कठिन है।

कर्नैल और तारो में मुलाकातें होने लगीं। दोनों घंटा दो घंटा नित्य प्रति इकट्ठे गुज़ारते। कभी लक्ष्मण झूले पर झूलते, तालाब के किनारे बैठकर बातें करते, कभी गाड़ी पर चढ़कर बाबू और गार्ड बनते। लेकिन ड्राइवर कोई न बनता था वे क्योंकि इस कला से परिचित न थे। इसलिये गाड़ी चलाने का अरमान मन ही में रह जाता।

उनकी ये मुलाक़ातें अक्सर एक कुंज में होतीं। वे एक दूसरे के पास बैठे प्राकृतिक दृश्य देखा करते। स्वच्छंदता के प्रतीक पक्षी उड़ते, चहकते और खेलते बहुत ही भले मालूम होते। बहुत से तोते एक तोती के पीछे भागते। विचित्र और विलक्षण उपायों से प्रणय-क्रीड़ा करते। तोती आगे आगे उड़ती। किसी अयोग्य और अनचाहे तोते को क़रीब आते देखकर चोंचों से आक्रमण कर देती और अवज्ञा का एलान करती हुई दूर उड़ जाती।

बाक़ी सब प्रेम भिखारी इस बेवक़ूफ़ तोते के पीछे पड़ जाते। उसे फटकार भेजते। उसका मज़ाक़ उड़ाते।

इधर दो पंछियों का द्वन्द युद्ध और भी दिलचस्प होता। वे एक चिड़िया के लिये आपस में लड़ते। तारो कहती—"यह पंछी जीतेगा और कर्नैल कहता, "नहीं, वह जीतेगा।" इस बात पर दोनों शर्त बदते। उत्सुक नेत्रों से बहादुर प्रेमियों का झगड़ा देखते, और धड़कते हुए दिलों से परिणाम की राह देखते। मगर उन्हें हार जीत देखना नसीब न होता। क्योंकि वह लड़ते झगड़ते दूर उड़ जाते। वह चिड़िया भी उनके साथ उड़ जाती थी। उन्हें लड़ते देख कर तारो प्रसन्न हो जाती थी, उसका नारीत्व खिल उठता था।

फिर उनकी निगाहें उस कबूतर पर पड़ती जो गर्दन फुलाकर और सीना तानकर अपनी प्रेयसी के पास घूमता और "गुटरगूँ, गुटरगूँ" का राग अलापता।

तनिक फ़ासले पर और भी मनोहर दृश्य देखने में आता।

वहुत सी मोरनियाँ मोर के पास जमा होतीं। वह उन्हें देखकर सिर से पाँव तक खिल जाता और रंगीन परों को फैलाकर नाचने लगता। कितनी जिंदगी थी इस नाच में!

धरती के ये बालक प्रकृति की गोद में वैठकर जिंदगी का आनन्द लेते। जिस प्रकार वे निरीह पक्षियों के मनोभाव को जानते थे उसी प्रकार ये पक्षी भी उनके भावों को समझते थे। अगर वे उनके सामने अपना प्रणय प्रकट कर सकते थे तो ये अपना प्रेम क्यों उनसे छिपाते? प्रेम भी कोई छिपाने की वस्तु है? वास्तव में जव प्रेम खुल्लम खुल्ला किया जाता है तव वह प्रेम है, जव उसे छिपाया जाता है तव वह पाप है।

कर्नैल और तारो कोई निराली बात नहीं कर रहे थे। वे वही कर रहे थे जो हमेशा से होता आया है, जो प्राकृतिक नियम है, जो ध्रुव सत्य है। समाज ने इस नियम और इस सत्य को भुला दिया है। वेमेल जोड़े वनाकर मनुष्य से उसका प्राकृतिक अधिकार छीन लिया है। इंसान मजबूर होकर विद्रोह करता है। चोरी करता है। अपने पवित्र प्रेम को उसकी क्रूर दृष्टि से छिपा कर रखता है।

भादों का महीना वीत रहा था। दिन रात पसीने के मारे नाक में दम रहता था। हवा चौवीस घंटे में कभी कभी चलती। जमीन से उमस उठती। वातावरण घुटा घुटा सा रहता। सिर्फ सुवह का समय कुछ सुहाना होता। यही समय कर्नैल और तारो के मिलने का होता। यही समय सुख चैन से गुजरता।

दिन भर तारो दुविधा में पड़ी रहती वह सोचती आगे क्या होगा? अगर किसी को उनके प्रेम का पता चल जाय, अगर ये मुलाक़ातें बन्द हो जाँय, अगर वह महल में वापस चली जाय फिर वह क्या करेगी? वह इसी असमंजस में पड़ी रहती। भविष्य की चिन्ता पल भर के लिये पीछा न छोड़ती।

लेकिन यह चिन्ता भी उसके व्यक्तित्व को स्वस्थ बनाती थी। यह चिन्ता पहले की भाँति जानलेवा नहीं थी। पहले भविष्य पर भूत की परछाईं रहती थी। आगे की ओर देखने से भय उत्पन्न होता था। वह निराश होकर पीछे की ओर मुड़ जाती थी। लेकिन अब वह आगे की ओर देखने लगी थी। भविष्य की सुख चिन्ता उसकी आत्मा को विकसित करती थी।

एक दिन उसकी आँख समय से कुछ पहले खुल गई। वह सपने में कर्नैल को देख रही थी। वह उससे कोई जरूरी बात कर रही थी कि आँख खुल गई। वह कर्नैल से मिलने के लिये व्याकुल हो गई। उठ कर बाग में चली आई। काफ़ी देर इधर उधर घूमती रही। लेकिन कर्नैल नहीं आया। तारो के मन में शंका उत्पन्न हुई। उन के प्रेम का रहस्य तो नहीं खुल गया। किसी ने कर्नैल को रोक तो नहीं दिया। वह अवश्य आयेगा। ईश्वर करे वह आ जाय। मैं उससे कहूँगी, "चलो कर्नैल, हम यहाँ से भाग चलें। कहीं दूर—बहुत दूर, जहाँ कोई हमें मिलने से रोक न सके।"

वह इसी सोच में घूम रही थी कि दाईं ओर आहट हुई। किसी की आवाज़ सुनाई दी। वह उधर को चल पड़ी और एक वृक्ष की ओट में खड़ी होकर देखने लगी। माली और मालिन अपने बच्चे को प्यार कर रहे थे। मालिन ने उसे एक गाल पर प्यार दिया। माली दूसरी गाल पर प्यार देने के लिये झुका। लेकिन बच्चे ने हठात् मुँह घुमा लिया और वह हाथ पाँव पटकने लगा जैसे उसे चींटी ने काटा हो।

मालिन ने उसे पुचकार कर छाती से लगा लिया। उसके गाल पर हाथ फेरा और माली से कहा,

"हटो पीछे, तुम्हारा प्यार यह पसंद नहीं करता। यह मेरा बेटा है।" मालिन ने उसे प्यार दिया।

"इधर ला।" माली ने उसकी बाँह पकड़कर और बच्चे को उसकी गोद से छीनने की कोशिश करते हुये कहा,

"इसमें मेरा भी तो हिस्सा है।"

"कौन मानता है तुम्हारा हिस्सा?" मालिन ने उसका हाथ झटक दिया। रूप, रंग, आँख, नाक तो मुझसे मिलती है। तुम मुफ़्त में चले हो हिस्सा बँटाने।"

"झूठ, बिलकुल झूठ। सब कहते हैं कि बच्चा मुझ को पड़ा है।" माली चिल्लाया।

"अच्छा, चलते हो किसी से फ़ैसला कराने।"

"हाँ, जिससे तुम्हारा जी चाहे पूछ लो।"

तारा के जी में आया कि आगे बढ़कर उनका फ़ैसला कर

दे। लेकिन पति-पत्नी की प्रेम भरी नोक झोंक में व्यर्थ व्याघात करना उचित नहीं था। वह पंजों के बल लौट पड़ी ताकि उन्हें आहट भी सुनाई न दे।

सूर्य्य दूर सफ़ेदे के एक वृक्ष से उभर रहा था। तारो को अब मालूम हुआ कि वह आज नित्य से कुछ पहले उठ बैठी है। कर्नैल के आने का समय वास्तव में अब हुआ है।

वह कुंज में जा बैठी। आकाश पर बादल का एक टुकड़ा मँडरा रहा था, अवारा और बेमतलब। तारो उसकी ओर देखने लगी। वह किसी बहरूपिये की नाईं क्षण-क्षण शक्लें बदल रहा था। कभी लम्बा, कभी चौड़ा, कभी वृक्ष, कभी हल और कभी बैल अथवा घोड़े का रूप धारण कर लेता था। एक बार तारो ने चकित होकर देखा कि वह नन्हा सा बालक बन गया है और उसकी गोद में आना चाहता है। फिर दूसरे ही क्षण वह बढ़कर जवान होगया। उसकी शक्ल कर्नैल से मिलती थी। कर्नैल और बच्चे की एक साथ कल्पना-सुन्दर समन्वय था। सुखद भविष्य उसकी दृष्टि में घूम गया। वह जबसे रानी बनकर आई थी, इससे प्यारा सपना कभी नहीं देखा था।

वह इस स्वप्न में इतना खो गई कि उसे कर्नैल की पगध्वनि भी सुनाई नहीं दी।

"तारो" उसने पुकारा। आत्मविमुग्धता भंग हुई और तारो की निगाहें ऊपर उठीं।

कर्नैल आज सपाही की वरदी में नहीं था। उसने साधारण

कपड़े पहन रखे थे। सिर पर स्लेटी रंग का साफ़ा बँधा था जिसका तुर्रा उठ रहा था और एक लड़ कान पर लटक रहा था। गले में डोरिये की कमीज़ थी। कमर में भूरे रंग का जूता था। तहबंद जूते की एड़ियों को छू रहा था और जूते की नोकें आसमान की ओर उठी थीं।

तारो उसके तन पर यह पहनावा देखकर बहुत प्रसन्न हुई। वह बोली, "ख़ूब बन ठन कर आये हो। जैसे ससुराल जाना हो।"

"जाना कहाँ है? जहाँ तुम वहीं ससुराल।" कर्नैल ने उसके पास बैठते हुये उत्तर दिया और पूछा, "इतना मगन होकर क्या सोच रही थीं?"

"मैंने एक सपना देखा है।" तारो बोली।

"क्या?" कर्नैल ने पूछा।

"हम यहाँ से कहीं दूर चले गये—दूर परदेश में। वहाँ मैं हूँ, तुम हो। हमारा एक घर है और एक......," वह शर्मा गई।

"हाँ कहो।" कर्नैल ने उसकी ठोड़ी पकड़ ली, "कहतीं क्यों नहीं? और एक?"

"चलो हटो। मैं नहीं कहती।" तारो ने उसे परे धकेल दिया।

"अच्छा न बताओ। मैं समझ गया।" कर्नैल ने उसे चिढ़ाया।

"मैं शर्त लगाती हूँ कि तुम ज़रा भी नहीं समझे।"

"समझ गया तो ?"

"क्या ?" तारो की आँखों ने पूछा।

"और एक बच्चा।"

तारो का चेहरा कानों तक सुर्ख़ हो गया। कर्नैल खिलखिला कर हँस पड़ा। फिर वे अशब्द, गम्भीर बैठे रहे जैसे दोनों ही घर और बच्चे का सपना देख रहे हों।

"मेरी बहन का व्याह है, यह तुम्हें मालूम है ?" कर्नैल ने बात शुरू की। "मैं एक हफ़्ते के लिये जा रहा हूँ और तुमसे छुट्टी लेने आया हूँ।"

"ननद का व्याह हो और मैं यहाँ बैठी रहूँ। मुझे नहीं ले जाओगे अपने साथ ?" तारो ने ये शब्द बिना किसी शर्म और झिझक के कह दिये। उसकी आँखों में उत्साह भरा था जैसे वह अभी चलने को तैयार हो। लेकिन कर्नैल ने इसे मज़ाक़ की बात समझा और बोला, "मैं तो ले चलने को तैयार हूँ। पर तुम्हीं न चलोगी।"

"चलूँगी क्यों नहीं ? तुम ले जाने वाले बनो।" वह और भी कुछ कहना चाहती थी। लेकिन मन के भाव को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्द नहीं मिले। उसकी कलात्मक उँगलियाँ कर्नैल की कमीज़ के एक बटन से खेलने लगीं। वह कभी उसे खोलती थी और कभी बंद करती थी। आख़िर ज़ुबान को शब्द मिल गये और वह बोली, "रत्नी से मिलने को जी तरसता है।"

तारो की आँखें कर्नैल को "चलो चलो" का संदेश दे रही थी। लेकिन कर्नैल इस हद तक जाने को तैयार नहीं था। दरअसल उसने यह सोचा तक भी न था कि तारो उसके साथ चलने को तैयार हो जायेगी। राजा की रानी ने किसी परपुरुष से प्रेम किया हो इस प्रकार की कहानियाँ तो उसने बहुत सुन रखी थीं। लेकिन कोई रानी किसी साधारण व्यक्ति के साथ भाग निकली हो ऐसी बात सुनने में नहीं आई थी। जिस बात का उदाहरण न हो और जिस काम के लिये आदमी पहले से तैयार भी न हो उसे एक दम कर डालना सम्भव नहीं। "जानती हो इस का परिणाम क्या होगा?" कर्नैल ने कहा।

तारो को इस उत्तर की आशा नहीं थी। कर्नैल के शब्द उसके हृदय पर घन-प्रहारों की तरह बरसे। उसका नारीत्व आहत हो गया और वह तिनक कर बोली, "जानती हूँ। हम दोनों को ज़िंदा जला दिया जायेगा। बोटी बोटी काटकर कुत्तों को डाल दी जायेगी। फाँसी लगा दी जायेगी।"

तारो का चेहरा सख्त पड़ गया। आँखों में खून उतर आया। वह मुँह दूसरी ओर मोड़ कर घृणा से बोली, "मर्द होकर डरते हो?"

कर्नैल चुप था। उसने तारो का प्रचंड रूप आज पहली बार नहीं दूसरी बार देखा था। वह जब कोई बात करने पर तुल जाती थी तो सब कठिनाइयों और सब रुकावटों को सबल घृणा से ठुकरा देती थी। फिर वह मर्द होकर क्यों झिझकता रहे?

क्यों डरे ?

लेकिन उसे उत्तर देने का अवकाश ही नहीं मिला। महल की ओर बहुत से क़दमों की चाप सुनाई दी। दोनों को छिपने की पड़ गई। अगर कोई व्यक्ति उसे इन कपड़ों में रानी से बातें करता देख लेता तो क्या सोचता ?

[१]

तारो वहाँ टहलती रही और कर्नैल बाग से निकल जाने की राह खोजने लगा। वह उस जगह के कोने कोने से परिचित था, और उसे मालूम था कि दक्षिण की ओर दीवार कम ऊँची है। वह उसी तरफ़ को चल दिया। दक्षिण-पूर्वी कोने में जहाँ तालाब बना था वहाँ ऊँचाई और भी कम रह गई थी, क्योंकि वह जगह आम सतह से लग भग एक फ़ीट ऊँची हो गई थी। वह यहीं से दीवार पर चढ़कर दूसरी ओर छलांग मार गया। इसलिए उसे किसी ने नहीं देखा। दीवार के नीचे सूने खेत पड़े थे। वह इन खेतों में से अपराधी की भाँति चुपके चुपके चला जा रहा था। वह ऐसे जा रहा था मानों पक्षियों तक की दृष्टि से अपने अपराध को छिपा लेना चाहता हो!

उसने सड़क पर पहुँचकर इत्मीनान की साँस ली। नये जूतों पर गर्द पड़ गई थी, उसे झाड़ा। वैसे इसकी आवश्यकता नहीं थी। उसे पैदल चलकर गाँव जाना था। रास्ते में जूतों पर

गर्द का दोबारा पड़ जाना अनिवार्य था। उस ने जूता झाड़ने का काम बिना सोचे ही किया था। शायद यह इस बात का प्रमाण था कि वह खतरे से निकल आया है। अवचेतना ही में वह गाँव की ओर चल पड़ा था।

वह सोच रहा था कि उसने तारो को ठीक जवाब नहीं दिया। वह नाराज़ हो गई होगी। चाहे कितनी ही जोखिम उठानी पड़े उसकी बात तो माननी ही पड़ेगी। मर्द होकर डरते हो? वाक़ई मर्द होकर क्या डरना! और फिर कर्नैल—कर्नैल तो किसी से कभी नहीं डरता। वह तारो को बता देगा और प्राणों की बाज़ी लगाकर सिद्ध कर देगा कि वह किसी से नहीं डरता। सिर्फ़ तारो ही ने देहात में जन्म नहीं लिया। वह भी उसी देहात में उत्पन्न हुआ है जिसकी परिपाटी यह है कि किसी ने तनिक सिर उठाया तो उसका भेजा खोल दिया। कोई जरा खाँस कर क़रीब से गुज़र गया तो आँखों में ख़ून उतर आया। बात की बात में लाठियाँ चल जाती हैं, सिर खुल जाते हैं। वे और सब कुछ सहन कर सकते हैं, मगर कोई उनकी वीरता को चुनौती दे यह बात सहन कर लेना उनके लिए सम्भव नहीं।

वह गाँव की ओर बढ़ा जा रहा था। नया जूता चुरमुर चुरमुर कर रहा था। लेकिन वह उसे सुन नहीं रहा था। उसके दिमाग़ में तो जलन थी। तारो के इस वाक्य का, "मर्द होकर डरते हो," एक एक शब्द बिच्छू के डंक की तरह चुभ रहा था।

उसको प्रताड़ित कर रहा था। अगर ये शब्द किसी शत्रु या प्रतिद्वन्द्वी ने कहे होते तो वे उसे इतना व्याकुल न करते और अगर करते भी तो उनकी प्रतिक्रिया कुछ और होती। लेकिन तारो के शब्द एक नारी के मुख से निकले थे जो उसे प्राणपण से प्यार करती थी, जिसका प्रेम उसकी आत्मा में मिठास बन कर घुल रहा था, जो उसकी जीवन संगिनी बन कर भविष्य को सुख और उल्लास से भर देना चाहती थी। वह स्वयं अजदहे के मुँह में फँसी थी और चाहती थी कि कर्नैल उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाले। लेकिन जब उसे भय से पीछे हटते देखा तो वह यह बात कहने पर मजबूर हो गई। ये शब्द कर्नैल के क्रोध को ही उत्तेजित नहीं करते थे उसके स्वाभिमान को भी उकसाते थे। उसका कर्त्तव्य था कि वह मृत्यु के मुँह में कूद कर भी तारो का हाथ पकड़ लेता। परिणाम की परवाह किये बिना संकट से उसका उद्धार करता। तारो ने अबला होकर भी साहस का परिचय दिया और वह मर्द हो कर भी झिझकता ही रहा। तारो की आँखों में घृणा उभर आई थी। वह उसे कायर समझ रही होगी।

नारी की दृष्टि में, विशेष कर उस नारी की दृष्टि में, जिसे वह प्यार करता हो मर्द का कायर बन जाना कितना कष्टकर है। कर्नैल के मस्तिष्क में वे शब्द गूँज रहे थे और तारो की निगाहें चुभ रही थीं।

वह कैसे बताये कि वह कायर नहीं है। वह वाकई

कायर नहीं था। जान पर खेल जाना उसके लिये साधारण बात थी। यह सब कुछ एक क्षण में हुआ और ज़रा सी ग़लती से हुआ। आत्मरक्षा की स्वभाविक भावना ने उसकी वीरता को पीछे डाल दिया। अगर तारो ने पहले कभी चलने का ज़रा सा संकेत भी किया होता तो वह कदाचित ये शब्द न कहता। लेकिन······लेकिन अब तो शब्द कहे जा चुके थे। उन्हें अनकहा बनाना था। कर्नैल को अपनी वीरता का परिचय देना था।

वह चलते चलते रुक गया। उसके मन में विचार आया कि अभी जाकर तारो से कह दे, "चल! चल! मैं तुझे लेने आया हूँ। दुनिया का कोई भय मुझे अपने निश्चय से डिगा नहीं सकता। अगर राजा का हाथी चुराना पड़े तो मैं उसे भी छिपा कर रख सकता हूँ। फिर तेरा छिपाना तो कठिन ही क्या है? तुझे तो मैं अपनी आँखों में, अपने हृदय में छिपा सकता हूँ।"

लेकिन इस समय तारो से मिलना मुमकिन नहीं था। वह शोर क्या था? कर्नैल के अनुमान में जमादार की आवाज थी। वह स्वभावानुसार मज़दूरों और मशक्कतियों पर रोब गाँठ रहा था। सफ़ाई और मरम्मत का मामला था। बहुत से लोग आये थे। उनकी मौजूदगी में कर्नैल किस तरह वहाँ जा सकता था? और फिर ड्यूटी भी नहीं थी। इस स्थिति में तारो से मिलने की कोशिश व्यर्थ थी। उसे अपना भय न हो, तारो के बदनाम हो जाने का डर तो था।

और, तारो के कहने का अर्थ यह तो नहीं था कि कर्नैल जरूर उसी समय उसे अपने साथ ले जाय। उसकी बात तो एक ऐसे दिल की पुकार थी जो अपने वातावरण से तंग आ चुका था। अगर कर्नैल उसकी भावनाओं का तनिक मान करता, जरा हँस कर कह देता, "तारो, मेरे लौटने का इंतजार करो। अब की मैं रत्नी से तुम्हारे लाने की बात पूछ आऊँगा और साथ ही सवारी का प्रबन्ध भी कर लूँगा। पैदल चलोगी तो कोमल पाँव पक जायेंगे," तो तारो प्रसन्न हो जाती और आशा भरे नेत्रों से उसके लौटने का इन्तज़ार करती।

वह फिर आगे चल पड़ा। पछतावा अब तारो को साथ न लाने का नहीं था, बल्कि इस बात का अफ़सोस था कि उसने ढङ्ग से जवाब क्यों नहीं दिया। लेकिन हर समय उचित बात कहना आदमी के वश का रोग नहीं। चिंतन और क्रिया मानव स्वभाव के दो पहलू हैं। चिंतन दिमाग़ करता है और किसी विचार को क्रियान्वित करना दिल का काम है। क्रिया के समय दिल आगे और दिमाग़ पीछे रहता है। कोई असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर दिमाग़ आगे आ जाता है और दिल पीछे रह जाता है। पहला जवाब दिमाग़ ने दिया था। दिल दिमाग़ में जो अन्तर है उसी का नाम पछतावा है।

पीछे से एक तेज़ क़दम मुसाफिर चला आ रहा था। कर्नैल ने उसकी ओर देखा। वह भी कोई देहाती था। लेकिन कर्नैल उसे पहचानता नहीं था। वे दोनों ही एक दूसरे के लिये

अजनबी थे। मुसाफ़िर ने कर्नैल से पूछा

"शहर से आये हो ?"

"हाँ।"

"कौन से गाँव जाओगे ?

"मर्दुन वास जा रहा हूँ। मैं शहर में रहता हूँ। पुलिस में नौकरी रखी है। मेरी बहन का ब्याह है। सात दिन को छुट्टी लेकर आया हूँ........" कर्नैल ने देहाती प्रथा के अनुसार अपने बारे में सब कुछ बता दिया। अगर वह सब बातें एकदम न बताता तो मुसाफ़िर एक एक करके सब पूछता।

"चलते चलते रुक क्यों गये थे ? क्या पीछे कुछ भूल आये हो ?"

"जी नहीं। भूला भाला तो कुछ नहीं। वैसे ही जूता बदलने को रुक गया था। कर्नैल की भाषा देहाती थी और स्वर शहरी था।

फिर कर्नैल ने भी मुसाफ़िर से इसी प्रकार की बातें पूछीं। मालूम हुआ कि उसे बहुत दूर जाना है। इसीलिये वह तेज़ तेज़ चल रहा है। जितनी देर बातचीत होती रही कर्नैल उसके साथ साथ चलता रहा लेकिन फिर क़दम ढीला कर दिया और पीछे रह कर अपने आपसे कहा, "एक अजनबी से कैसे बताऊँ कि मैं पीछे बहुत कुछ भूल आया हूँ। कोई अपना सगा होता ! दिली यार होता !"

कर्नैल जैसे सहज-स्वभाव मनुष्य की ज़िन्दगी प्रकृति की

तरह खुली किताब है। हर एक आदमी उसे पढ़ सकता है। लेकिन उसकी सब बातें जानने का अधिकारी तो केवल वही व्यक्ति हो सकता है जो उसके समीप आकर बैठता है। फिर वह चाहे पन्नों को भी उलटने की कोशिश न करे, वे आप ही आप हवा की मदद से खुलते चले जाते हैं। शहर में कर्नैल के समीप बैठने वाला एक पनसारी का नौजवान लड़का श्याम लाल था। पहले पहल वह उससे सिर्फ सौदा सलफ खरीदा करता था। फिर तनख्वाह के पैसे उसके पास जमा कर देता और जरूरत पड़ने पर ले आता। उसकी ईमानदारी से वह इतना खुश था कि कर्नैल अब कोई भी बात उससे छिपा कर नहीं रखता था। जिस प्रकार उसके पास जमा रुपये के लिये कोई डर नहीं था उसी प्रकार उससे कही हुई बात भी उसके उर में सुरक्षित रहती थी। अगर मुसाफिर के बजाय श्यामलाल होता तो वह अपने मन की बात उससे कह देता। कर्नैल स्वयं उससे मिलने के लिये व्याकुल था।

श्यामलाल ने उसे एक मर्तबा एक बात सुनाई थी। वह एक रात घूमते घूमते स्टेशन पर पहुँचा। वहाँ एक सुन्दर और जवान लड़की बैठी मिली। वह पति के दुर्व्यवहार से तंग आकर घर से निकल आई थी। लड़की ने श्यामलाल को बताया कि उसका कोई अपराध नहीं था फिर भी न जाने क्यों जब से आई थी पति ने एक दिन भी सीधे मुँह बात नहीं की थी वह किसी दूसरी स्त्री से प्यार करता था। अकारण अपमान से नाक में दम आ

गया। हार थक कर बाहर क़दम निकाला। अब वह किसी भी मर्द के साथ जाने को तैयार थी।

सचमुच उसकी आँखें एक ऐसे मर्द को खोज रही थीं जो उसे प्यार कर सके। शायद गाड़ी उसे किसी ऐसे ही मर्द के पास ले गई हो।

श्यामलाल उसे वहीं छोड़ आया था। कर्नैल ने उस औरत को देखा नहीं था। लेकिन यह कहानी सुन कर ही उसका मन उस औरत के लिये सहानुभूति से भर आया था और उसने ताना दिया था, "श्यामलाल तू तो अपने आप को मर्द समझता है। मर्द होकर औरत को यों छोड़ आया?"

इस वाक्य से कर्नैल ने जितनी श्यामलाल की भर्त्सना की थी उससे कहीं अधिक अपनी कायरता पर पछताया।

श्यामलाल का विवाह उस समय हुआ था जब वह मुश्किल से चौदह पन्द्रह वर्ष का होगा। वह चार बच्चों का बाप था। उसकी ज़िंदगी में ऐसा वक्त कभी आया ही न था जब उसने नारी की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस किया हो। फिर उसके मन में औरत के प्रति वह आकर्षण कहाँ से उत्पन्न होता जो कर्नैल के मन में मौजूद था?

कर्नैल के मन में यह घटना अकसर उभर आती थी। वह सोचा करता था काश, श्यामलाल के बजाय स्टेशन पर वह होता। वे पाँच भाई थे। ले दे कर बड़े भाई का विवाह हुआ था। बाक़ी चारों का विवाह भी कभी होगा इस बात की

सम्भावना बहुत कम थी। कर्नैल की उम्र पचीस वर्ष के लगभग थी। वह सब से छोटा था। वह स्वस्थ और बलिष्ट नौजवान था। उसके मुकाबिले में दस श्यामलाल भी क्या थे ?

लेकिन उसे इस बात का विश्वास नहीं था कि दुनिया में कोई औरत उसके लिये भी उत्पन्न हुई है। एक उसी की बात नहीं गाँव के सैकड़ों नौजवान अविवाहित जीवन व्यतीत करते थे। वे नारी का स्वप्न देखते उत्पन्न होते और वही स्वप्न देखते मर जाते थे।

उन्होंने नारी की सुन्दरता अथवा अच्छाई बुराई का कोई माप नियत नहीं किया था। शादी में चाहे कैसी भी औरत मिल जाय वह उसी के साथ जीवन बिता लेते थे। शादी के अलावा किसी और ढङ्ग से कोई औरत हाथ लग जाय तो वे इसे भी अपना सौभाग्य समझते थे।

समाज से अधिक उन्हें अपनी आवश्यकता का ध्यान रहता था। वे विद्रोही और उद्दंड थे। समाज ने उद्दण्डता की आलोचना करनी भी छोड़ दी थी।

सड़क छोड़कर कर्नैल एक पगडन्डी पर हो लिया। वह कुछ कदम चला होगा कि वृक्षों के एक झुंड में से तीतर बोल उठा। वृक्षों का वह झुंड कर्नैल के दाईं ओर पड़ता था। दायें हाथ तीतर का बोलना अच्छा सगुन समझा जाता है। कर्नैल उसे बोलते सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। गाँव के निकट आ जाने के कारण वह पीछे की बात भूलकर घर वालों के सम्बन्ध में सोचने लगा।

वह चिन्ता और विषाद की स्थिति से उभर आया और होंठों से सीटी बजाने लगा।

पगडन्डी खेतों में से वल खाती हुई गुज़र रही थी। मार्ग में नाले पड़ते थे। चौड़े नालों पर पुल बाँध दिये गये थे और जो तंग थे उन्हें आदमी फाँद कर गुज़र सकता था। कई बार पगडन्डी पुरानी लीक छोड़कर नयी लीक अख्तियार कर लेती थी। वह एक डगर पर कभी नहीं चलती। मनुष्य ने उसे अपनी आवश्यकता के लिये बनाया था और वह आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्तन कर लेता है।

सड़क एक बार जहाँ और जिस तरह बन गई सदियों से उसी तरह चली आती है। हज़ारों मनुष्यों का खून पसीना बनकर बहे तब कहीं उसमें परिवर्तन हो सकता है। इसके बावजूद भी सड़क से इन्सान की ज़रूरत पूरी नहीं होती। उसे देहात के दिल तक पहुँचने के लिये पगडन्डियाँ बनानी पड़ती हैं। सड़क का आराम टाँगे और मोटरों पर चलने वाले थोड़े लोगों को पहुँचता है। अधिकांश लोग पगडन्डियों से लाभ उठाते हैं। सड़क भी उन्हीं लोगों के लिये बनी है जिनके लिये समाज।

देहाती लोग सड़क के बजाय पगडन्डियों पर अधिक चलते हैं। पगडन्डियाँ उनके पैरों को लग चुकी हैं, उनके जीवन का अंग बन चुकी हैं। खेतों में काम करते समय जब उन्हें भूख लगती है तो वे इन्हीं पगडन्डियों की राह देखा करते हैं। कोई पतली कमर या सुरमई आँखों में अमृत भरे सिर पर छाछ की मटकी

रखे आती होगी। कर्नैल भी सड़क से हटकर पगडन्डी पर चलते हुए मंज़िल के क़रीब पहुँच गया था जब कि परे कोई हलवाहा अथवा चरवाहा गा रहा था—

"डन्डी डन्डी जान वालिया! मेरा डिगया रुमाल फड़ा जा।"*

[२]

हर एक गाँव की अपनी सभ्यता, अपनी परम्परा और अपने रीति रिवाज होते हैं। जिस गाँव में जिस पेशा और जाति के लोग अधिक बसते हैं उनकी मनोवृत्ति के अनुसार वहाँ की सभ्यता बनती है।

नईनगर और उसके आस पास के दस बीस गाँव में अस्सी नब्बे फ़ीसदी आबादी हिन्दू जाटों की थी। जाट बिरादरी हिन्दू रीति रिवाज की पाबंद समझी जाती है और, कहने के लिए उसे हिन्दू शास्त्रों और देवी देवताओं पर पूर्ण विश्वास है। रूढ़ि प्रथा भी क़ायम है। प्रथा के अनुसार विवाह भी होते हैं और प्रथा के विपरीत अगर कोई मर्द किसी औरत को बिन ब्याहे घर में डाल ले तो उसे भी उचित समझा जाता है। उस औरत के बच्चे भी पिता की सम्पत्ति के वारिस उसी प्रकार बनते हैं जिस प्रकार एक विवाहित स्त्री के।

इस बिरादरी में बनिये ब्राह्मणों की तरह विधवायें नहीं बैठतीं। औरत भी मर्द की तरह जितनी बार चाहे शादी कर सकती है। बल्कि पति के जीवित रहते भी अगर वह उसके साथ निर्वाह नहीं

* ऐ पगडन्डी पर चलने वाले राही, मेरा रुमाल गिरा, मुझे पकड़ाता जा।

कर सकती तो उसे छोड़कर किसी दूसरे मर्द के साथ रह सकती है।

तलाक़ लेने के लिए उसे अदालत में जाने की आवश्यकता नहीं। उसने अपनी हिम्मत से क़ानून का गला घोंट दिया है। किसी मर्द के लिए एक से अधिक विवाह करने की मनाही तो नहीं, मगर औरत का अभाव और समाज की हठधर्मी सब से बड़ी मनाही है। औरत के एक साथ एक से अधिक पति होना क़ानूनी तौर पर जायज़ नहीं। लेकिन रिवाज यह है कि एक भाई की पत्नी पर दूसरे भाईयों का अधिकार बराबर समझा जाता है। पर उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाले बच्चों का बाप वही भाई समझा जाता है जो उस औरत को ब्याह कर लाता है।

कर्नैल के पाचों भाइयों में प्रतापा सब से बड़ा था। उसकी उम्र चौंतीस साल थी और कर्नैल की छब्बीस साल। बाक़ी भाइयों की उम्रें दो ढाई साल के अन्तर से उनके बीच की थी। वे सब सुन्दर और पराक्रमी थे। अपने काम में निपुण थे। वे खेत में इकट्ठे काम करते और एक ही घर में मिल जुल कर जीवन बिता रहे थे। उनमें किसी प्रकार मन मुटाव अथवा साम्पत्तिक बँटवारा न था। यद्यपि रत्नी प्रतापे की पत्नी थी, मगर उसकी मुस्कान से कोई भाई वंचित न रहता था। सभी प्रेम और इत्मीनान का जीवन बिता रहे थे।

खेती बाड़ी, काम और देहात में आपस की शत्रुता के कारण किसान के लड़कों में परस्पर मेल मिलाप आवश्यक है। लेकिन

इस मेल मिलाप के लिए सीमेंट का काम औरत करती है। पहली पीढ़ी में कर्नैल का बाप सब से बड़ा था। चार भाई थे। इनमें से एक किसी ब्राह्मणी को लेकर भाग गया था और किसी दूर शहर में दूध दही की दुकान खोलकर आबाद हो गया था। वह फिर वापस नहीं आया। बाकी तीन भाइयों को कर्नैल की माँ ने घी शक्कर की तरह मिलाकर रखा। किसी को भूलकर भी शिकायत का मौका नहीं दिया। एक चचा अब तक जीवित था और पाँचों भाई पिता के सदृश उसका सम्मान करते थे।

उनकी मा को वृद्धावस्था में बहू का मुँह देखना नसीब हुआ था। गत वर्ष जब वह मृत्यु शय्या पर पड़ी थी तो उसने अपने लाड़ली बहू को पास बुलाकर नसीहत की थी, "बेटी, आज से तुम इस घर की मालकिन हो। पाँचों बेटों में कोई भेदभाव न समझना। मैंने इन्हें अपने दूध से पाला है।"

और प्रतापा को सीख दी थी, "बेटा, तू घर में सबसे बड़ा है, स्याह सफ़ेद का जिम्मेदार है। ये भाई तेरे सपुर्द हैं। कोई चीज इनसे प्यारी न समझना, किसी प्रकार का भेद मत रखना।"

प्रतापा के लिये मा का आदेश युधिष्ठिर के लिये कुन्ती का आदेश था। मृतप्राय मा की तसल्ली के लिये उसने कहा, "मा, देखती हो। हम तो पहले ही हर एक चीज बाँट कर खाते हैं। तुम्हारे बाद भी इस बात में कोई फ़र्क़ न आयेगा।" और, उसका गला रुँध गया था।

सचमुच अब तक इस बात में कोई फ़र्क़ नहीं आया। प्रतापा

के लिये भाई दुनिया की हर एक चीज़ से प्यारे थे और मा की सीख इस प्यार में सुगन्ध भर रही थी। रत्नी ने भी सास की नसीहत को जीवन में ढाल रखा था। वह पहले ही देहाती रिवाज से परिचित थी। इस लिए एतराज़ की गुंजाईश ही न थी। वह सब काम सुबुद्धि से चला रही थी। अगर उसकी स्वर्गीय सास को किसी तरह दुनिया में दोबारा लौटने का अवसर मिल जाता तो वह बहू की योग्यता की जी भर कर प्रशंसा करती। अगर भाइयों में किसी बात पर मन मुटाव हो जाता तो उसकी मीठी बोली, एक मधुर मुसकान, समस्त रोष दूर कर देती। उसके नयनों में द्वेष नाशक शक्ति थी और बोली में प्रत्येक घाव को भरने वाला मरहम। वह घर की लक्ष्मी थी। हर एक भाई उसकी बात का मान करता था। पाँच कर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त उसे एक छठी विशेष इन्द्रिय मिल गई थी जो घर की एकता स्थापित रखने के लिये आवश्यक थी।

रत्नी का ब्याह हुए चार वर्ष बीतने को आये। अब तक वह दो बच्चों की मा थी। पति और देवर उन्हें हाथों हाथ उठाये फिरते थे। जब वे काम करने खेत पर चले जाते तो वह स्वयं बच्चों का ध्यान रखती। दूध बिलोने से चौके चूल्हे तक का सब काम करती। खेत पर रोटी पहुँचा आती। समय असमय भैंसों के लिये सानी और बैलों के लिये चारा कतर देती।

इतना काम करने के बावजूद उसका स्वास्थ्य आश्चर्यजनक था। वह कुन्दन की हो गई थी। उसका रङ्ग दिन दिन निखर

रहा था। जैसे जैसे उम्र बढ़ रही थी जवानी पूर्ण और भरपूर होती जा रही थी।

तारो उसे देखती तो हैरान रह जाती। यह रत्नी वह रत्नी नहीं थी जो उसके मामूली धक्के से झाड़ी में जा गिरी थी। उसका वास्तविक रूप अब प्रकट हुआ था। उसकी शक्तियों का यथेष्ट विकास अब हुआ था। उसे इतनी जवानी और इतना रूप कहाँ मिल गया ?

करनैल जब घर पहुँचा तो वह घर विवाह का घर बना हुआ था। उसकी दो बुआ, उनके लड़के और लड़कियाँ, बड़ी बहन, बहनोई और उनके बालक, फिर रिश्तेदार, चारों ओर चहल पहल थी। विवाह की तैयारियाँ धूम धाम से जारी थीं।

सब आकर्षणों का केन्द्र रत्नी थी। किसी को कोई चीज़ दरकार हो वह रत्नी से माँगे। कौन मिठाई कितनी बनानी है ? किस लागी को क्या देना है ? घी मैदा कहाँ रखा है ? सब बातें रत्नी से पूछी जाँय। वह सब बातों का उत्तर धैर्य, सलीके और गम्भीरता से देती। काम में व्यस्त होने के कारण उसे समय पर भोजन पाना भी नसीब न होता। शरीर से इतना पसीना बहता कि कपड़े पानी की तरह भीग जाते। फिर भी घबराहट और क्रोध का कोई लक्षण प्रकट होने नहीं पाता। माथे पर एक भी बल नहीं पड़ता। सहनशीलता और धैर्य की प्रतिमा सी वह इधर उधर घूमती फिरती।

मर्द खेतों में काम करते थे। रत्नी घर की व्यवस्था ठीक

रखती थी। उसके प्रबन्ध में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं था। दरअसल रानी तो वह थी। तारो ने तो रानी बन कर अपने व्यक्तित्व को खो दिया था।

बारात धूम धाम से आई। बराती ऊँटों, घोड़ों, बैलगाड़ियों और रथों पर सवार थे। उन तीन दिनों में कौन कौन से रस्मो रिवाज और क्या क्या रंग राग हुये उनके विस्तार में जाना व्यर्थ है। सारे हंगामे का मतलब तो इतना ही था कि डंके की चोट दुनिया पर प्रकट कर दिया जाय कि वे सब एक छोकरी की लूट में शामिल होने आये हैं। धर्म शास्त्र पुरुष और स्त्री की जिस आवश्यकता का जिक्र करना पाप समझते हैं उन्हीं शास्त्रों के आधार पर आज वह आवश्यकता इतनी बड़ी है कि उसे पूरा करने में जितनी खुशी मनाई जाय, जितनी धूम धाम रचाई जाय उतनी थोड़ी है।

संसार में पुरुष और स्त्री के प्रेम के बहुत चर्चे हैं। लेकिन क्या किसी वस्तु को बिना देखे सुने भी प्रेम हो जाना सम्भव है? बाराती और दूल्हा जिस लड़की को व्याहने आये हैं उसे न किसी ने देखा है और न उसके रङ्ग रूप और गुण स्वभाव के बारे में किसी से कुछ पूछा है। फिर भी अपार उल्लास पुकार पुकार कर कह रहा है—हमें इस लड़की की आवश्यकता है। हम इसे लेने आये हैं। तुम उसे ले जाने तो दो। प्रेम पीछे उत्पन्न हो जायेगा। और वह हो भी जाता है।

प्रत्येक प्रेम की नींव आवश्यकता है।

इस अवसर पर केवल दूल्हा ही नहीं बाराती उससे भी अधिक प्रसन्न होते हैं। उनमें से हर एक यही समझता है कि गाँव की दस दस औरतों से ब्याह किये जा रहा है। औरतों से हँसी ठिठोली करने के लिये उनकी टोलियों की टोलियाँ भूखे भेड़ियों की तरह गलियों में मारी मारी फिरती हैं। जहाँ कहीं चार औरतें बैठी देख पड़ती हैं बिना कहे, बिना बुलाये अपने हाथ से चारपाईयाँ बिछा कर वहीं जा विराजते हैं। बस फिर क्या है? बूढ़ी, जवान, ब्याही, कुमारी का भेद उठ जाता है। नोक झोंक शुरू हो जाती है। दोनों ओर से व्यंगमिश्रित गालियों के वाण छूटते हैं और दिलों के फफोले टूटते हैं।

गाँव के मर्द—अगर किसी को बहू बेटियों से ऊँची नीची बात कहते सुन लें तो उनकी आँखों में खून उतर आता है—परन्तु इन्हें बाराती समझ कर कन्नी काट जाते हैं। क्योंकि जब कभी उन्हें बाराती बनने का अवसर मिलता है तो वे भी दूसरे गाँव में अपने दिलों के फफोले इसी तरह फोड़ते हैं।

तीन दिन तक अच्छा खाकर और भद्दा बोलकर बाराती विदा हुए। दुल्हन भाइयों से भावज से, अन्य सम्बन्धियों और सखी सहेलियों से, रोकर गले मिली और रोते रोते रथ में बैठ कर चल दी। कुंठित कंठ की सुबकियाँ रथों की घंटियों, ऊँटों की टल्लियों और घोड़ों के घुँघरुओं में खोकर रह गईं। पथ की धूल ने उसे पीछे खड़े भाई बन्धुओं की दृष्टि से ओझल कर दिया। हसरत भरी निगाहों में उदासी छा गई जैसे उनकी

सम्मिलित आत्मा का एक टुकड़ा अलग होकर जारहा हो ।

दूसरे दिन रिश्तेदार भी अपने घरों को रवाना हो गये। कर्नैल को भी उसी दिन शहर लौटना था। वह चाहता तो था कि बहन के वापस आने तक वहाँ ठहरे लेकिन छुट्टी समाप्त हो गई थी और तारो का ख्याल शहर की ओर खींच रहा था।

भाभी ने उसे तैयार होते देखकर कहा, "कर्नैल तू ब्याह के घर से इतनी जल्दी चला जायेगा। अगर नौकरी का मामला न होता तो मैं तुझे अभी न जाने देती।"

"ठीक है भाभी। नौकरी की बात न होती तो मैं खुद कौन सा जाने लगा था।" तनिक रुककर एक गहरी साँस लेकर कर्नैल फिर बोला, "शहर कौनसा दूर है। फिर किसी दिन आकर मिल जाऊँगा। मुझे तो इस बात की ख़ुशी है कि ब्याह ठाठ से हो गया।"

"ब्याह शादी में यही बड़ी बात है कि लागी सम्बन्धी कोई नाराज़ न हों और सब काम हँसी खुशी से हो जाय।" रत्नी ने कहा और फिर कर्नैल की ओर प्यारसे देखकर मुसकराते हुए बोली, "कर्नैल, मैं तो उस समय प्रसन्न हूँगी जब तेरा ब्याह इस ठाठ से होते देखूँगी।" भाभी की आँखों से ममता टपक रही थी।

बाकी भाइयों की तरह रत्नी पर कर्नैल का भी पूर्ण अधिकार था। लेकिन शायद शहर में रहने के कारण, शायद सबसे छोटा होने के कारण वह मा की तरह उसका आदर करता था। उनके प्यार में विकार का लेशमात्र भी न था। इसलिये कर्नैल के

ब्याह की बात छेड़कर रत्नी को निर्द्वेष प्रसन्नता प्राप्त हुई थी। उसके मन की अभिलाषा आँखों में अंकित हो गई थी।

कर्नैल ने गर्दन झुकाली। जैसे कह रहा हो, "अगर हो जाय तो अच्छा ही है।"

कुछ क्षण निस्तब्धता रही। एकाएकी रत्नी को सहेली का विचार आया और वह बोली, "कर्नैल, अपनी तारो रानी का हाल तो बताओ। तुझसे कभी मिलती तो न हो गी?"

"मिलती क्यों नहीं?" कर्नैल की गर्दन गर्व से तन गई। "अभी आती दफ़ा मिलकर आया था। कहती थी कि तुमसे मिलने को बहुत जी चाहता है।" और फिर मुस्कराकर पूछा, "कहो तो किसी दिन लेता आऊँ?"

इस समय कर्नैल की सारी प्रेम-कहानी उसकी आँखों से झाँक रही थी।

"चल बड़ा आया है मिलाने वाला।" रत्नी ने ताना दिया, "मैं शहर गई तो मिला न सका, अब उसे यहाँ ले आयेगा।"

अगर रत्नी यह सवाल करती, "क्यों आँख लड़ गई है?" तो शायद कर्नैल सारा क़िस्सा बयान कर देता। मगर वह अपने मन के भाव दबाकर बोला—"न आ सके तो दूसरी बात है। वह तो सहेली ही है न! मिलने को जी तो चाहता ही है।"

रत्नी को पुराना ज़माना याद आगया। तारो का सुन्दर हँसमुख चेहरा नज़रों में घूमने लगा। वह बोली, "कर्नैल, राजा

उसे प्यार तो ख़ूब करता होगा ?"

जब उसे मालूम हुआ कि प्यार करना तो दूर रहा राजा उसे शक्ल तक नहीं दिखाता तो रत्नी के मन में. सहेली के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई । फिर यह सहानुभूति एक दूसरी ही भावना में परिवर्तित हो गई ।

यह भावना मनुष्य के मन में उस समय उत्पन्न होती है जब वह किसी दूसरे मनुष्य को जो समाज में अपने आप से एक दम ऊँचा उठ गया हो संकट में देखता है । इस भावना में सहानुभूति कम व्यंग अधिक होता है । रत्नी बोली," अगर मिले तो पूछना तो सही कि तू तो बड़े नख़रे से कहा करती थी कि अगर कोई मुझे पसन्द न करे तो आदमी तो क्या मैं ब्रह्मा के पास भी न रहूँ ।"

[३]

कर्नैल का अनुमान ठीक था । जमादार महल में सफ़ाई और सफ़ेदी कराने आया था । असूज चढ़ते ही राजा के पहाड़ से लौटने का समय निकट आ जाता था । उस समय मरम्मत के अलावा कमरों का सब सामान निकाल कर उन्हें ख़ूब साफ़ किया जाता था । फिर प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्थान पर क़ायदे से रख दी जाती थी, ताकि राजा अगर इधर आ निकले तो नाराज़ न हो ।

इस बार सफ़ाई का काम हमेशा से पन्द्रह बीस दिन पहले

शुरू हो गया था क्योंकि पोलीटिकल एजेंट रियासत का दौरा करने आ रहा था। इस बात की सूचना राजा को पहाड़ ही पर पहुँच गई थी और उसे समय से पहले ही काशमीर छोड़कर राजधानी की ओर प्रस्थान करना पड़ा था; क्योंकि अगर पोलिटिकल एजेंट—अँग्रेज़ अफ़सर-दौरा करने आये तो उसका स्वागत करने के लिये राजा का रियासत में उपस्थित होना आवश्यक है।

तारो को उस दिन बाग़ से महल में लौटना पड़ा। उसे यह जगह छोड़ते समय बहुत कष्ट हुआ। शायद इतना कष्ट होली के दिन राजा की उपेक्षा से भी नहीं हुआ था, यह वह जगह थी जहाँ उसका प्रेम-पुष्प विकसित हुआ था। जहाँ उसने अतीत को भूलकर भविष्य के सपने देखने शुरू किये थे। वह प्रेम और वह सपने उससे छीने जारहे थे। अब वह किस सहारे पर जीवित रहेगी?

महल की विवशता, कटुता और अवसाद उसे फिर वापस मिल रहा था। इस विचार ही से उसके प्राण निकलते थे। लेकिन वह क्या करती? विवश थी। उसने अपने आपको मृत्यु के सामने डाल दिया। वह बग्घी में ऐसे बैठी थी जैसे उसकी लाश को श्मशान ले जाया जा रहा हो।

अगर राजा को लौटना न होता तो तारो महीनों क्या चाहे उम्र भर बाग़ में पड़ी रहती। रियासत का मामला था, कोई बात जब एक बार हो गई तो हो गई। दोबारा इसके बारे में कोई विचार भी न करता। जितना प्रमाद रियासत के विधान

बरता जाता है उतना तो शायद ईश्वर के विधान में भी न होगा। राजा है भी तो छोटा ईश्वर। उसके यहाँ तारो का रहना तो एक तरफ़ रहा, अगर वह उस दिन कर्नल के साथ चली भी जाती तो किसी को इस बात का इतना भी खयाल न होता जितना एक चिड़ीमार को अपने जाल से एक चिड़िया के उड़ जाने का होता है।

महल में तारो के कमरे की हालत बहुत खराब थी। मुद्दत से सफ़ाई बिलकुल नहीं हुई थी। फ़र्श पर, ग़ालीचों पर शीशों और रोशनदानों पर कमरे की हर एक चीज़ पर गर्द की मोटी मोटी तहें जम गई थीं। जब से वह बाग़ में गई थी नैना आवश्यक वस्तुयें लेने दो चार बार यहाँ आई थी। वरना इन्सान का क़दम इस कमरे में नहीं पड़ा था। मनुष्य की गर्म साँस ने उसके वातावरण को जीवन नहीं प्रदान किया था। प्रत्येक वस्तु पर उदासी छाई थी। वातावरण घुटा घुटा था। सारा दृश्य इतना भयानक और जघन्य था कि भीतर पग धरते जी घबराता था। जैसे यह कमरा आबाद महल का भाग न हो, बल्कि सुनसान जंगल में बना हो। जिसमें इन्सान क्या परिन्दे ने भी कभी पर नहीं मारा।

लेकिन नैना के दरवाजा खोलते ही तारो ने भीतर प्रवेश किया जैसे उसे कमरे का और अपनी हालत का बिल्कुल ज्ञान न हो। परिचित पग आप ही आप उठ रहे थे। वह गर्द में भरे पलङ्ग पर जा लेटी। उसकी साड़ी, जम्पर और बाल गर्द से भर गये।

फिर भी वह लेट गई और चित लेटी रही। उसकी आँखें खुली थीं। लेकिन यह बताना कठिन था कि वह क्या देख रही है। शायद वह हर एक चीज़ देख रही थी। शायद वह कुछ भी नहीं देख रही थी। उसकी आँखें सूनी थीं। निगाहें मानसिक क्षितिज पर अटक गई थीं।

नैना उसे रोकना चाहती थी, "ठहर, मैं सफ़ाई करलूँ। कुर्सी निकाल देती हूँ बरामदे में बैठ जाना।" लेकिन वह उसे रोक नहीं सकी। शब्द उसके होंठों पर जमकर रह गये। बाग़ से चलने का नाम सुनते ही तारा की चिंतन शक्ति शिथिल हो गई थी। बग्घी में बैठे नैना उसकी लाश का मातम करती आई थी। वह लाश को क्या रोकती? लाश से क्या कहती? उसके अपने भीतर रंज और ग़म का धुआँ उठ रहा था। वह तारा के लिए सन्तोष और आश्वासन के शब्द कहाँ से लाये?

ऐसी दशा में धीरज और नसीहत के शब्द कहना बेगानों का काम होता है। अपनों का हृदय पीड़ा से पिघल जाता है। नैना का हृदय भी पीड़ा से पिघल रहा था। तारा उसकी बेटी थी, अपने पेट से उत्पन्न हुई बेटी से भी अधिक प्रिय।

उसकी अपनी कोख कभी हरी नहीं हुई थी। उसे समाज के पाप ने शुष्क कर दिया था। वह जवान होते ही विधवा हो गई थी। सारी उम्र दुख में गुज़ारी, बाँदी बनकर अपमान, अवज्ञा और निर्दयता सहन करती रही। सिर्फ़ तारा ने उसे स्नेह और आदर से देखा था। नैना के हृदय की समस्त ममता

उस पर उमड़ आई थी। तारा पर अत्याचार होते देखकर वह सह नहीं सकती थी। निर्बल शरीर की समस्त शक्ति से वह उस अत्याचार के विरुद्ध लड़ना चाहती थी

अबला की शक्ति आँसू होते हैं। नैना की आँखों में भी आँसू भर आये और टप टप तारा के माथे पर गिरने लगे।

गर्म गर्म आँसू—जीवन से भरपूर आँसू—पेशानी पर गिरते ही तारा की अचेतनता टूटने लगी। कोई वस्तु उसके भीतर जज्ब होने, डूबने और घुलने लगी। जिस प्रकार पानी में कङ्कड़ फेंकने से लहरें उठती हैं और वह उस समय तक उठती रहती हैं जब तक कि वह कङ्कड़ तह में बैठ न जाय। उसी प्रकार आत्मा में इन आँसुओं के डूबने से लहरें उठने लगीं। आँसू डूबते गये, लहरें उठती गईं। इन लहरों में तड़प थी, विह्वलता थी और जिन्दगी थी, गोया नैना आँखों से आँसू बहाकर उसे जिन्दगी का इन्जेक्शन दे रही थी।

आँसू बहते रहे। लहरें उठती रहीं। तारा की मुख मुद्रा क्षण प्रतिक्षण बदलती रही। आत्मा पर छाई हुई जड़ता की तह टूट गई। मानसिक क्षितिज पर अटकी हुई निगाहें इधर उधर घूमने लगीं।

तारा ने दृष्टि ऊपर उठाकर नैना की ओर देखा और उठकर बैठते हुए बोली—बिलकुल धीरे से। जैसे उसे अपनी आवाज़ से डर लगता हो, जैसे वह अपने आपको मलामत कर रही हो।

"रोती क्यों हो ? मैं मर तो नहीं गई ?"

"मरने से तो सारा झगड़ा ही खत्म हो जाता है। मुझसे यह दुख नहीं देखा जाता।" नैना ने कुंठित स्वर में कहा। कहते कहते उसकी साँस फूल गई। उसके शब्द वायुमण्डल में ऐसे गूँज रहे थे जैसे सारा वातावरण सिसकियों से भरा हो।

नैना और तारो चुप बैठी रहीं। बोलना तो दरकिनार वे एक दूसरी को देख भी नहीं सकती थीं। उन्हें एक दूसरे की सूरत से भय लगता था, जैसे वे दोनों अपराधी हों। जिन्दगी की बाज़ी में सब कुछ हार बैठी हों। एक की सूरत दूसरी की हालत का दर्पण थी। जिसे देख कर दुख बढ़ता था। बोलने से दुख के बाहर वह निकलने का भय था। वे चुपचाप बैठी थीं। एक दूसरी की ओर देख भी नहीं सकती थीं। कमरे में खामोशी छाई थी—भयानक खामोशी !

नैना के चेहरे पर बुढ़ापे की झुर्रियां थीं। उसने दुनिया में रहकर बहुत सा अनुभव प्राप्त किया था। बहुत कुछ सीखा था। उसके ग़म में भी गम्भीरता झलकती थी। उसका हर एक शब्द अंतःकरण की गहराइयों से निकलता था। वह जीवन के तथ्यों और कटुता से भरपूर था। वह सचमुच तारो का मरना देख सकती थी लेकिन उसका दुख नहीं देख सकती थी, उसकी पीड़ा नहीं सह सकती थी। उसने भरी जवानी में पति

की मृत्यु देखी थी। एक नारी के लिये इससे भयानक दुख और नहीं हो सकता।

नैना के अतीत और भविष्य पर कभी समाप्त न होने वाली पतझड़ छाई थी। उसने कभी लुक छिप कर वसन्त के जो सपने देखे थे वे भी अब भयानक दिखाई देते थे। बस, अब मर कर ही वह जिंदगी की झंझटों से छूट जाना चाहती थी। सब दुखों का यही इलाज रह गया था।

लेकिन तारो अभी जवान थी। उसके मन में अभी दुनियाँ में रह कर बहुत कुछ देखने और सीखने की उमग थी। उसकी निगाहें वेदना के इस भयानक अंधकार में भी मार्ग खोज रही थीं। उसे मृत्यु की नहीं जीवन की तलाश थी। निराशायुक्त परिस्थिति के बावजूद हारी हुई बाजी को फिर से जीत लेने की आशा मन से मिटी नहीं थी।

तारो का हृदय जल रहा था। उसकी निगाहें इधर उधर भटक रही थीं। वह सामने पड़ी प्रत्येक वस्तु को क्रोधाग्नि में जला देना चाहती थी। कमरे में चारों तरफ़ गर्द ही गर्द पड़ी थी। गर्द थी और जाले थे—जाले जो मकड़ी ने खिड़कियों पर, रोशनदानों पर, कानिस पर और फानूस पर हर जगह बुन लिये थे और बुन कर उनमें खुद फँस गई थी। इन जालों की महीन बारीक तारों का सिलसिला दूर तक फैलता चला गया था!

कमरा साफ़ नहीं था। उसका मार्ग साफ़ नहीं था। तारो को प्रत्येक वस्तु असुन्दर और मनहूस दिखाई दे रही थी। लेकिन

ये जाले और उनके तार तो बहुत मनहूस मालूम होते थे जैसे वे तार उसके गिर्द बुने गये हों। जैसे वह एक बड़े जाले में फँसी हुई है, जिससे बाहर निकलने के लिये महान प्रयत्न की आवश्यकता है।

जाला उसने खुद तो नहीं बुना था कि मकड़ी की भाँति उसमें रहना पसन्द करे। फिर किसने बुना है वह जाला ? समाज ने। लेकिन समाज अस्पष्ट संज्ञा है। परोक्ष अभिधान है। तारा मस्तिष्क का स्थूल वहाँ तक नहीं पहुँच सकता था।

वैसे समाज स्वयं भी तो एक जाला है जिसके तार इस जाले के तारों से अधिक महीन और अधिक लम्बे हैं। वे दूर दूर तक फैले हुये हैं। उन्होंने इन्सानों को जकड़ रखा है। किसने बुने हैं ये तार ? व्यक्तियों ने। तारा को परोक्ष समाज के बजाय व्यक्तियों पर क्रोध आता था। वह नैना पर नाराज़ होती थी। अपने आप पर कुढ़ती थी। हर एक चीज़ तोड़ देने को उसका जी चाहता था।

अब तो उसे मालूम था, वह समझती थी कि उसके गिर्द यह जाला किसने बुना है। वह सदा उसी व्यक्ति पर झुँझलाया करती थी। उसकी ज्वलंत आँखें कानिस पर पड़े राजा को फ़ोटो पर जा पड़ीं। वह पलंग से उठी और प्रतिकार लेने पर तुले पशु की भाँति लपक कर उसने उस फ़ोटो को उठा कर ज़मीन पर पटक दिया।

शीशा टूट गया। फ्रेम टूट गया। शीशे के छोटे छोटे टुकड़े

राजा के चेहरे में गड़ गये। अगर उसकी नाक टूट जाती, गालों से खून बहने लगता तो तारा बहुत प्रसन्न होती।

लेकिन वह बेजान वस्तु थी। उस में खून नहीं था। बहता कहाँ से? अलबत्ता आकृति बिगड़ गई। तारा को इसी से खुशी हुई और उसके होठों पर हल्की सी मुस्कराहट छा गई। फिर इस तस्वीर से नफ़रत हुई और अपने आप से लाज लगी। वह उधर से दृष्टि घुमाकर ऊपर की ओर देखने लगी। फ़ोटो उठाने से उसके पास बुना हुआ जाला टूट गया था और उसमें फँसी हुई मकड़ी स्वतन्त्र होकर ऊपर की ओर चढ़ रही थी।

"अब तो सावित्री रानी भी पहाड़ से लौट आयेगी।" नैना ने कहा।

नैना चुप चाप बैठी सब कुछ देख रही थी। न जाने क्या सोच कर उसने यह कहा था। तारा ने कृतज्ञ दृष्टि से उसकी ओर देखा। जिस गर्त में वह इस समय पड़ी थी उससे उभरने के लिए सहारे की जरूरत थी। नैना का यह वाक्य जीने का काम देने लगा। वह शब्दों की सीढ़ियों पर पग धरती हुई ऊपर चढ़ने लगी।

सावित्री की सुखद स्मृति उसके हृदय को हमेशा पुलकित कर देती और सब कुछ भूल कर उसका ध्यान सावित्री की सहानुभूति, साहस और स्वच्छन्दता पर केन्द्रित हो जाता था। उसके ये शब्द "जिंदगी बाज़ी ही तो है। आदमी हारता हो तो भी हिम्मत से खेले जाय।" उसके मस्तिष्क में अंकित हो कर रह

जाते थे।

तारा उस समय उनका अर्थ भली भाँति न समझ सकी थी और न अब उनकी व्याख्या कर सकती थी। पर इन शब्दों से साहस बढ़ता था। उसके भीतर उत्साह उत्पन्न होता था। ऐसा महसूस होता था जैसे इन शब्दों द्वारा सावित्री ने कोई प्रेरणा उसकी आत्मा में भर दी हो।

सावित्री के इस वाक्य में व्यक्तित्व निहित था—एक नारी का व्यक्तित्व, जो स्वच्छन्द थी, जिसने समाज के जाले में फँसने से इन्कार कर दिया था, जिसे भविष्य की चिन्ता नहीं थी, जो वर्तमान से सन्तुष्ट थी, जिसके होठों पर मुस्कराहट और आँखों में सुन्दर सपने करवटें लेते थे।

[४]

रियासत में पोलिटिकल एजेन्ट का आगमन साधारण बात नहीं थी। राजा से लेकर अरदली तक के मन में चिन्ता उत्पन्न हो जाती थी। साहेब किसी बात पर नाराज़ न हो जाय। किसी ने रियासत के विरुद्ध शिकायत तो नहीं कर दी? वह किसी प्रकार की जाँच पड़ताल तो नहीं करेगा? तमाम कर्मचारी एक सप्ताह पहले से साहेब की प्रसन्नता प्राप्त करने में लग गये। मंदिरों में प्राथनायें हुई। गेस्ट-हाऊस, बाग़, बाग़ीचों और सड़कों को ख़ूब सजाया और सवाँरा गया। सरकारी इमारतें सफ़ेदी और रंग से चमकने लगीं।

सब से जटिल समस्या थी साहेब के लिए उपहारों का प्रबन्ध करना। राजा दो तीन लाख से कम लागत के उपहार क्या भेंट करेगा? लेकिन ख़जाने में तो तीन पाई की भी गुंजाइश नहीं थी। राजा था, कुत्ते थे, राजपाट की इतनी बड़ी मशीनरी थी। ख़र्च ही बड़ी मुश्किल से चलता था।

दो ढाई साल हुए राजा बीमार हुआ था। बाहर से डाक्टर बुलाये गये थे और आरोग्य होने की ख़ुशी में मन्दिरों और ब्राह्मणों को दान दिया गया था। लेकिन ख़ज़ाने में इस ख़र्च की क्षमता नहीं थी। प्रजा से चन्दा जमा क्यों न किया जाता? प्राणों से प्यारा राजा मृत्यु के मुँह से जीवित बच निकला था। प्रजा राज-भक्त थी। उसे अपने राजा के लिये मास तक काट देने में एतराज़ नहीं था। प्रजा हर कठिन समय पर राजा के काम आती थी और इस समय भी आई।

साहेब के उपहारों के लिये चन्दा जमा किया गया और लोगों ने यह चन्दा भी ख़ुशी ख़ुशी दिया। सिर्फ़ चन्द सिरफिरे नौजवान तिलमिलाये और तिलमिला कर रह गये थे। उन्होंने कुछ पर्चे बाँटे, सभायें की, शोर मचाया।

श्यामलाल के पनसारी दादा ने भी बक झक की थी। बक झक करना उसकी आदत थी। वह पुराना आदमी था। बुढ़ापे ने दिमाग़ चाट लिया था। अब सिर्फ़ ज़ुबान रह गई थी। वह दुकान पर आने वाले प्रत्येक भिखारी को झिड़क देता था। वह सब के सामने स्पष्ट शब्दों में कहता था, "जाओ, जाओ! यहाँ

क्यों आये हो। हमारा राजा तो .खुद भिखारी है।"

अँङ्गरेज़ अफ़सरों का महत्व लोग न जाने क्यों समझ नहीं पाते। वे न हों तो रियासतों के राजे मनमानी करें। प्रजा को लूट खसोट कर खा जाँय। किसी को ज़रा भी न्याय न मिले। बहू बेटियों की इज़्ज़त खतरे में पड़ जाय। अँग्रेज़ एजेन्ट राजा की सरगर्मियों पर कड़ी दृष्टि रखता है। .ज़रा सी शिकायत सुनकर रियासत में दौड़ा आता है।

फिर भी लोग कहते हैं, "अँग्रेज़ एजेंट हो या वायसराय हो, रियासत में उसके आने का अभिप्राय उपहार और भेंट प्राप्त करना होता है। जब रिटायर होने के दिन निकट आते हैं तो ये रियासत की ओर रुख कर लेते हैं। तनख़ाह और पेंशन के अतिरिक्त लाखों रुपये उपहारों के रूप में ले जाते हैं और इँगलैंड जाकर राजसी ठाठ से जीवन व्यतीत करते हैं।"

दुनियाँ में शक्की मिजाज़ के लोगों की कमी नहीं। और फिर कोई किसी की .ज़ुबान कैसे पकड़ सकता है? लोग चाहे कुछ कहते रहें अंग्रेज़ों को जब तक हिन्दुस्तान में रहना है उन्हें अपना कर्त्तव्य पालन करना है। और वे उसे नियम पूर्वक और मेहनत से पालन कर रहे हैं।

पतझड़ी रियासत के एजेन्ट पर यही ज़िम्मेदारी थी कि वह रियासत के सुप्रबन्ध का ध्यान रखे और अँधेर नगरी चौपट राजा होने से बचाये। उसे अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास था। इसलिए वह अपने बहुधन्धी जीवन में से समय निकाल कर

रियासत का दौरा करने आया था। वह था और उसकी मेम। मेम के साथ दो कुत्ते थे जो चुस्त और तन्दुरुस्त थे। उन्हें वह प्यार करती थी। राजा ने भी शायद इन्हीं से कुत्तों को प्यार करना सीखा था। किसी जाति के सद्गुण को सीखना समझदारी की बात था। मसीह के बेटे कुत्तों तक को प्यार करते हैं। गोरे शरीरों में पवित्र आत्मायें बास करती हैं। तभी तो ये शासक बने हैं और शासक भी इतने बड़े कि उनके राज्य में सूर्य्य भी कभी अस्त नहीं होता।

क्लाईव के बेटे पोतों का—मसीह की सन्तान का अनुकरण करना राजा का सौभाग्य था। अपना मज़हब उनसे भिन्न होते हुए भी धर्मपालसिंह नित्य प्रति डेढ़ दो घंटे बाईबल पढ़ा करता था। वह सिर्फ पढ़ता ही नहीं था; मसीह के उपदेश को कार्यान्वित भी करता था। अगर एजेन्ट किसी कारण उसके गाल पर चपत रसीद कर देता तो राजा धर्मपालसिंह अपना दूसरा गाल भी पेश कर देता।

जब से एजेन्ट के आने का समाचार सुना था राजा ने बाईबल के अतिरिक्त माला जपना भी आरम्भ कर दिया था। उसकी ज़ुबान पर हर समय यही प्रार्थना रहती थी, "हे भगवान, संकट सिर से टल जाय।"

साहेब को रियासत में दो दिन ठहरना था। राजा धर्मपाल सिंह दोनों रोज़ पूजा पाठ में लगे रहे। सिर्फ जिस समय साहेब पधारे उस समय हाथ मिलाया और मुस्करा दिये थे। वह

ज़ुबान से बोले कुछ नहीं। साहेब ने ख़ुद ही कहा था, "आप का राज बहुत अच्छा चल रहा है। हम आप से बहुत प्रसन्न हैं।" राजा ये शब्द सुनकर ऐसे प्रसन्न हुये थे जैसे देवता से वरदान मिल गया हो।

साहेब की खातिरदारी और रहन सहन का प्रबन्ध सर पी० एन० मेहता और सरदार लाला ओंकारदास के सपुर्द था। उनकी कार्यदक्षता में संदेह नहीं था। किसी ऐसी बात पर साहेब की नजर नहीं पड़ने दी गई जिससे राजा की फ़िज़ूल खर्ची प्रकट हो। ऐसे व्यक्ति से मिलने नहीं दिया गया जो राजा के विरुद्ध साहेब के कान भर सके।

रियासत में ऐसा आदमी था ही कहाँ? सारी प्रजा राज भक्त थी, राजा के प्रजा पालन से सन्तुष्ट थी। साहेब की सद्भावना प्राप्त करने के लिये अपना मांस काटकर उसने चंदा दिया था।

सर पी० एन० मेहता और लाला ओंकारदास ने साहब के शुभागमन पर सबसे पहले मेम साहबा को उपहार भेंट किये क्योंकि अगर खुद साहब को भेंट किये जाते तो रिश्वत समझी जाती। पर मेम साहब को उपहार भेंट करना प्रतिष्ठित अतिथि का सम्मान था। मेम साहबा उपहार पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उनके हृदय पर राजा की उदारता अंकित हो गई और उन्होंने मुस्कराते हुए पति से कहा, "देखा जान! मैं कहती थी न कि ये राजा लोग बहुत अच्छे होते हैं।" साहेब ने शायद मेम

साहबा के इन्हीं शब्दों से प्रभावित होकर राजा से कहा था--"आपका राज बहुत अच्छा चल रहा है। हम आप से बहुत खुश हैं।"

दो दिन गेस्ट हाउस में रहकर एजेन्ट मि० जान ब्राकवे ने रियासत का दौरा पूरा किया। सरदार लाला ओंकारदास से उनके बीच होने वाले पत्र व्यवहार के सिलसिले में कुछ बातें पूछीं। साहेब के पास सुरचों कोठी के बारे में बहुत सी शिकायतें आई हुई थीं।

लाला ओंकारदास ने यह कहकर उन सब पर पानी फेर दिया कि यह उन लोगों की करतूत है जो किसी न किसी बहाने राजा के विरुद्ध राजनीतिक आन्दोलन चलाना चाहते हैं। साहेब का सन्देह दूर होगया क्योंकि वह हिन्दुस्तानियों को ख़ूब समझते थे। इन्होंने ही कारतूस में चर्बी का बहाना लेकर इतना बड़ा विद्रोह कर दिया था।

सर पी० एन० मेहता से फ़ौज और न्याय के बारे में बात चीत हुई।

"अगर किसी से हमारा जंग छिड़ जाय तो आपका रियासत क्या मदद करेगा?" साहेब ने मुस्कराते हुये पूछा।

"मदद की एक ही कही। जान माल सब आपका है।"

"लोगों में किसी किसम का सयासी गड़बड़ तो नहीं।"

"नहीं साहब! ब्रिटिश राज थोड़े ही है। देसी रियासत है।" और हँसकर कहा, "सारी प्रजा राजभक्त है।"

"और आपका यह सावित्री सबसे बड़ा राजभक्त है।" साहेब ने बराबर की चोट की और गेस्ट हाऊस क़हक़हों से गूँज उठा। अँग्रेज़ एजेन्ट और मेहता दोनों ही हँस रहे थे। सम्मिलित हँसी उनके पारस्परिक सामीप्य का प्रमाण थी।

सर पी० एन० मेहता अपने आपको अँग्रेज़ एजेन्ट का मित्र समझता था। इसलिये सदा खुलकर बात करता था और जब साहब उसकी बात से ख़ुश होता था, मज़ाक का जवाब मज़ाक में देता था तो उसे उसकी ओर से भी मित्रता का विश्वास हो जाता था और उसकी गर्दन इतराये हुए कबूतर के सदृश गर्व से तन जाती थी।

जब साहेब मेम और मेम के उपहारों के साथ विदा हो गया तो सर पी० एन० मेहता ने इस वार्तालाप को लतीफ़ा बनाकर और कुछ नमक मिर्च लगा कर सरदार लाला ओंकारदास से बयान किया। बयान करने का अभिप्राय साहेब से अपनी मित्रता जताने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। लेकिन लाला ओंकारदास रियासत के सबसे बड़े नीतिज्ञ थे। वे सदा दूर की कौड़ी लाते थे। मेहता की यह बात सुनकर बड़ी गम्भीरता से बोले, "मिस्टर मेहता, आप इसे मज़ाक न समझिये। बड़े आदमी अपनी बात हमेशा घुमा फिरा कर कहते हैं। साहेब का दौरे पर आने का मतलब ही यही था। उन्हें सावित्री पर सन्देह है। हो सकता है किसी ने डायरी दी हो। वे ज़रूर उसे किसी का जासूस समझते हैं।"

बात से बात निकल आती है। मेहता को सावित्री से वैर था। शायद इसलिये कि वह उनकी मुहताज नहीं थी। अपनी हर एक बात सीधी राजा से मनवा लेती थी। वह स्वतन्त्र और सुन्दर थी और उसने मेहता को कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखा था। कारण इसके अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है। लेकिन यह सच है कि वह उसके पहलू में काँटे की तरह खटकती थी। पर वह यह नहीं समझ पाया था कि इस घटना को काँटा निकालने के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

सरदार लाला ओंकारदास की बात सुनकर वह उछल पड़े और उनकी बुद्धि की सराहना करते हुए बोले, "सरदार साहब, आपकी दूरदर्शिता का मैं पहले ही से क़ायल हूँ। यह बात आपने सचमुच पते की कही है। वे सावित्री को जर्मनी, जापान अथवा किसी हिन्दुस्तानी नेता का जासूस समझते हैं। अगर साहेब के मन में यह बात है तब तो रियासत में सावित्री की मौजूदगी ख़तरनाक है।"

"बिलकुल। बुद्धिमानों के लिये इशारा काफ़ी है। साहेब कह गये हैं। हमें इसका इन्तज़ाम फ़ौरन करना चाहिये।"

लाला ओंकारदास अपनी बात पूर्ण विश्वास के साथ कह रहे थे। उन्होंने जो कुछ सोचा था वे उसे दुरुस्त समझते थे। इसके अलावा लोगों में आम चर्चा चल रही थी कि राजा सरचों कोठी में जाकर जो अनाचार करता रहा है, साहेब उसी के लिये कान ऐंठने आया है। सावित्री को जासूस घोषित करने से

यह चर्चा दब जायेगी। इसलिये उसका वहाँ से चला जाना राजा और रियासत के लिये हितकर समझा गया। सारी स्कीम तै कर लेने के अनन्तर वे दोनों राजा की सेवा में उपस्थित हुए।

"सुनाइये। साहेब चले गये ?" राजा ने पूछा।

"जी सरकार। चले गये। बहुत प्रसन्न हुये राज प्रबन्ध देखकर।"

"बड़े नेक आदमी मालूम होते हैं।" राजा ने माला एक ओर रखदी और सुख की साँस ली।

"जी सरकार। बड़े नेक दिल हैं और मिस्टर मेहता के गहरे दोस्त हैं।" सरदार लाला ओंकारदास ने कहा।

"अच्छा, अच्छा, बहुत अच्छा।" राजा ने फटी फटी आँखों से मेहता की ओर देखा जैसे इस बात से उसका महत्व बहुत बढ़ गया हो। आपसे कुछ ख़ास बात कही साहेब ने ?"

"ख़ास बात है भी और नहीं भी।" मेहता ने राजनैतिक ढंग से उत्तर दिया, "साहेब ज़रा सा संकेत कर गये हैं।"

राजा के होश उड़ गये। ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। साहेब का ज़रा सा संकेत भी साधारण बात नहीं। थोड़े दिन हुए साहेब के मामूली संकेत ने पड़ोसी रियासत के राजा हरभजन सिंह को पागल खाने पहुँचा दिया। उन्हें राजा का रवैया पसंद नहीं था। कह दिया कि दिमाग़ खराब है। वाक़ई उसका दिमाग़ खराब होगा तभी तो रवैया दुरुस्त नहीं रखा। लेकिन राजा धर्मपालसिंह को अपना रवैया दुरुस्त रखने

की आवश्यकता थी। वह मेहता की बात सुनकर ऐसी चिन्ता में पड़ गये कि उनसे आगे कुछ भी पूछते न बन पड़ा।

लाला ओंकारदास राजा की हालत को खूब समझते थे। उन्हें संकट में पड़े देखकर बोले, "चिन्ता की कोई बात नहीं। साहेब को सावित्री पर शक है। वे उसे जर्मनी, जापान अथवा किसी हिन्दुस्तानी नेता का जासूस समझते हैं।"

"जासूस समझते हैं? राम राम, जो आदमी सावित्री को जासूस समझता है वह कितना बड़ा पापी है!" राजा के मुँह से निकल गया लेकिन उसे उसी क्षण ध्यान आया, इतनी बड़ी बात बिना सोचे ही क्यों कह दी?

राजा को दूसरे ही क्षण अपनी असमर्थता का एहसास हो गया। उसका मुँह टका सा निकल आया। वह विवश और लाचार निगाहों से सर पी० एन० मेहता की ओर देखने लगा, जैसे पापी साहब नहीं वह खुद हो और मेहता और उसके अँग्रेज़ दोस्त से दया की भीख माँग रहा हो। वह परवश और भ्रमित निगाहों से इधर उधर देखता रहा जैसे वह पागल खाने में बैठा हो, जैसे उसका दिमाग़ खराब हो गया हो।

वह इस मानसिक कष्ट से छुटकारा पाना चाहता था। साहेब के रोष से बच निकलने की राह ढूँढ़ रहा था। आखिर घबराई हुई आवाज़ में लाला ओंकार दास से बोला. "आप हैं। मिस्टर मेहता हैं। आप जो चाहें करें। मैंने रियासत को आप लोगों के हाथ सौंप रखा है। मैं कुछ नहीं जानता। मैं जासूस को रियासत

में नहीं रख सकता। उसे बाहर भेज दो, मैं उसे नहीं रोकता।"

और, वह शिकार को जाने की तैयारी करने लगा। उसने काफ़ी दिनों से बनावटी ज़िंदगी अख्तियार कर रखी थी। जो समय शतरंज और शिकार खेल कर बीतता था वह पूजा पाठ में गुज़ारना पड़ा था। फिर भी यह मनहूस बात सुनने में आई थी। अब वह शिकार को जायेगा। दो चार तीतर बटेरों को गोली का निशाना बनायेगा। उसे अपनी शक्ति का एहसास होगा और तबीयत बहलेगी। सावित्री चली जायेगी, इस बात की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं थी। सावित्री की मनोहर आँखों और मधुर मुस्कान को शिकारी धर्मपाल सिंह ने एक दम भुला दिया था।

[५]

दूसरे ही दिन सावित्री को यह परवाना मिला।

"मैं, रियासत का चीफ़ मिनिस्टर, बड़े अफ़सोस के साथ आपको यह सूचना दे रहा हूँ कि किसी महिला का बिना विवाह किये राज भवन में रहना राज-मर्यादा के विरुद्ध है। श्रीमान् महाराजा साहब शायद किसी समय आप से विवाह करने का विचार रखते रहे हों। किन्तु अब उनका विचार बदल गया है। उन्हें इस अवस्था में विवाह करना अच्छा नहीं लगता। इस लिये श्रीमान् महाराजा साहब की इच्छा है कि आप अपनी सुविधा के अनुसार जब चाहें यहाँ से जा सकती हैं।

"आशा है कि इस सूचना से आपको किसी प्रकार का कष्ट

न होगा। इससे आप के व्यक्तित्व पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं आता। इतना समय आपका संसर्ग श्री मान महाराजा साहब के लिये आनन्द और हर्ष का कारण बना रहा। इसके लिये वे आपको धन्यवाद देते हैं।"

सावित्री ने सोचा इतनी साधारण सूचना के लिये इतने अधिक शब्द नष्ट करने की क्या ज़रूरत थी? और, फिर जब इन शब्दों में कोई सच्चाई नहीं, तथ्य नहीं। विडम्बना मनुष्य का स्वभाव बन चुकी है। वह समझता है कि इसके बिना काम नहीं चलता।

सामान बँधा रखा था। सावित्री जाने के लिये तैयार थी। इस स्थान के छोड़ देने का उसे तनिक भी अफ़सोस नहीं था। जैसे वह एक मुसाफ़िर थी। सफ़र के बीच में सराय में ठहरी हुई थी। थोड़े दिन सुस्ता लेने के बाद अब फिर आगे चल पड़ी थी। राजा के प्रति उसके मन में न आदर था न प्यार। जाते समय उससे मिल लेने की इच्छा भी मन में उत्पन्न न हुई।

हाँ, वह तारो से ज़रूर मिल लेना चाहती थी। दो दिन हुए नैना उसके पास आई थी। उसने बताया था कि तारो का जी महल में नहीं लगता। डर है कि वह फिर न बीमार पड़ जाय। सावित्री को आघात सा लगा, "बेचारी विवश और दुःखी लड़की! जी लगने का कोई आधार भी तो हो।" उसने सोचा।

उसके मन में तारो के प्रति अगाध सहानुभूति थी। उसने बीमारी में उसकी सेवा की थी, उसकी भावानाओं को समझा

था। आत्मा में निहित प्यास को देखा था। मनुष्य की निर्बलता और परवशता भी दूसरे को अपना बना लेती है। सावित्री का उस पर छोटी बहन की तरह मोह था। इस समय अगर उससे बिना मिले ही चली जाती तो सारी उम्र इस बात का रंज रहता।

उसने घड़ी पर नज़र डाली। गाड़ी आने का समय क़रीब था और वह परवाना मिलने के बाद पहली गाड़ी से रियासत छोड़ देना चाहती थी। लेकिन अब तारो से मिलना भी आवश्यक था। इसलिए दूसरी गाड़ी से जाने का निर्णय किया और वह बंधा हुआ सामान वहीं छोड़ कर महल की ओर चल दी।

सावित्री जब पहुँची, तारो कमरे में बैठी मैना को चोगा दे रही थी। वह घंटों बैठी उससे खेला करती थी। चोगा देना, प्यार करना, अपने मन की बातें उससे कहना और कभी उसकी सुनना यही काम था। कभी उसकी ज़ुबान से "माही आया, माही आया" सुनकर वह चौंक उठती थी। चकित नेत्रों से इधर उधर देखने लगती थी। उसे ऐसा महसूस होता जैसे माही सचमुच आ रहा हो। कर्नैल आ रहा हो।

लेकिन कर्नैल कहीं दीख नहीं पड़ता था। वह महल में प्रवेश नहीं कर सकता था। सिर्फ़ उसकी सुखद स्मृति आती थी। और, इस स्मृति में कितना उल्लास और आह्लाद भरा था। तारो कुछ देर के लिये विषाद, अवसाद और निरानंद वातावरण को छोड़ कर सुरभित संसार में खो जाती थी, जहाँ प्रेम पुष्प खिलते थे और शीतल समीर बहता था।

सावित्री को देखते ही वह उछल पड़ी। दौड़कर उससे गले मिली। फिर अत्यन्त आश्चर्य से उसे देखने लगी। सावित्री ने वही साड़ी पहन रखी थी जो उसने उस दिन पहनी थी जिस दिन कर्नल से नाम पूछा था, जिस दिन वह स्टेशन पर किसी को लेने जा रही थी। उसी तरह माथे पर बिन्दी लगी थी। आँखों में मस्ती झूम रही थी।

तारा को भूलकर भी खयाल नहीं आया था कि सावित्री उसे महल में भी मिलने आ सकती है। अब उसे अचानक अपने सामने देखकर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। "बैठो बहन, तुम्हें मेरी याद तो आई। मैं तो तुम्हें देखने को तरस गई। दरवाज़े की ओर देखते देखते आँखें थक गईं।" तारा ने प्रेम जताते हुये कहा।

"आँखें दरवाज़े की ओर लगी मुझे नहीं किसी और को देखती होंगी," सावित्री ने चुटकी ली।

तारा ज़मीन में गड़ गई। लेकिन उसे सावित्री की बात बुरी नहीं लगी। किसी भी सरल हृदय व्यक्ति को सचाई बुरी नहीं लगती। यह दूसरी बात है कि वह सच्चाई को छिपाये रखना चाहता हो। तारा ने विषय बदला -- "तुम पहाड़ से कब आईं?"

"यही, चार पाँच दिन हुए।"

"मुझे भी सुनाओ कुछ पहाड़ की बातें।"

"बातें हम फिर करेंगे। पहले अपनी मैना को चोगा दे लो।"

तारा मैना को पिंजड़े में बन्द करना भूल गई थी। यह

पहला अवसर था कि उसे आजाद छोड़ा गया लेकिन वह उड़ कर नहीं गई। पिंजड़े की खुली खिड़की पर चढ़ कर बैठ गई। तारा ने उसे पकड़ते हुये कहा, "देखो बहन, यह उड़ कर भी नहीं जाती।"

"पिंजड़े में रहने की आदत जो पड़ गई है"। सावित्री ने फ़ौरन जवाब दिया।

तारा ने सावित्री के मुँह की ओर देखा। उसने इस वाक्य को भी पहले वाक्य की तरह अपने पर व्यंग समझा और विषादपूर्ण स्वर में बोली, "आदत अगर न हो तो भी बन्द रहना पड़ता है।"

सावित्री का आशय उसके हृदय को ठेस लगाना नहीं था। वह उसके दुख से परिचित थी। जाते समय उसे धैर्य और आश्वासन देने आई थी।

अनजाने ही ज़ख्म कुरेदा गया। तारा को कष्ट पहुँचा। वह उसे सहन भी कर सकती थी। दोष सावित्री का नहीं था। वह सिर से पाँव तक दुख रही थी। सावित्री कहीं भी हाथ रखती कष्ट होना अनिवार्य था। तारा चुप रही। सावित्री भी चुप रही। दोनों एक दूसरे के सामने अपराधी और दोषी बनी गर्दन झुकाये बैठी रहीं।

अजीब दशा थी। सावित्री कभी कभी तारा की ओर देख लेती। वह ज़बान से सहानुभूति के शब्द कहने से भी झिझकती रही। आखिर तारा मैना को एकहाथ से दूसरे हाथ पर बैठाने और

उछालने लगी। वह कुछ देर तक उसे ऐसे ही उछालती, होठों से अस्पष्ट शब्द कहती और आँखों के इशारे से मतलब समझाती रही। फिर मैना को एक दम काफ़ी ऊँचे उछालकर बोली, "देखो बहन, यह उड़ाये से भी नहीं उड़ती।"

"यह तो उड़ जाय, तुम उड़ाना ही नहीं चाहतीं।" सावित्री मुस्कराई और हाथ बढ़ाकर कहा, "लाओ मुझे दो। मैं उड़ाकर दिखाऊँ।"

तारो ने उसे देने के बजाय मैना को छाती से लगा लिया और बड़ी निर्भीकता से स्वीकार किया, "इसे उड़ाने से पहले मैं ख़ुद उड़ जाना चाहती हूँ।"

दोनों सहेलियों ने एक दूसरे की ओर देखा और वे चुपचाप देखती रहीं। उनकी निगाहों में अपराध का कुंठित भाव नहीं था। एक दूसरे को समझ लेने की प्रसन्नता थी।

नैना ने कमरे में प्रवेश किया। वह बाज़ार से सब्ज़ी लेकर लौटी थी। वह झुक कर सावित्री का अभिवादन करना चाहती थी लेकिन सावित्री ने पहले खुदही उसे प्रणाम किया। वह ख़ुश होकर बोली, "तुम कब आईं सावित्री रानी?"

"मैं अभी आई हूँ।"

"तारो बेटी बहुत याद करती है तुम्हें।"

दोनों सहेलियों ने एक दूसरे की ओर देखा। फिर दोनों की निगाहें बूढ़ी दासी पर पड़ गईं। वह उन दोनों को प्यार करती

थी। जैसे वे उसकी अपनी बेटियाँ हों और वह उनकी सगी मा हो।

"खाना बनाओ। सावित्री भी हमारे साथ खायेंगी।"

नैना भोजन बनाने चली गई। दोनों सहेलियों में बातें होने लगीं। तारो को जब यह मालूम हुआ कि उनकी यह अन्तिम भेंट है, जिन्दगी में दोबारा मिलने का शायद संयोग ही न बने; तो उसे विश्वास नहीं आया। एक दम आश्चर्य हुआ।

"क्या तुम सचमुच जा रही हो ?" तारो ने पूछा।

"हाँ, मैं जा रही हूँ।" सावित्री बोली।

"क्यों ?"

"क्यों क्यों कुछ नहीं," सावित्री ने तारो की गाल पर हल्की सी चपत लगाते हुए कहा, जैसे वह दूध पीती बच्ची हो, "राजा को मुझसे प्रेम पैदा हुआ, वह मुझे ले आया। अब उसे मुझसे नफ़रत हो गई है, मैं जा रही हूँ।"

विशेष व्याख्या की जरूरत नहीं थी। तारो राजा के प्यार और नफ़रत से भली भाँति परिचित थी। वह उसका ज़िक्र तक छेड़ना नहीं चाहती थी। सावित्री जा रही थी। सावित्री को बहुत सी बातें करनी थीं। बातों की उसके पास क्या कमी है ? जब सुनाने लगती है तो समाप्त होने में ही नहीं आती ! शायद उसने वे बातें किताबों में पढ़ी हैं। लेकिन उनमें तजरबे की मिठास होती है। व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। वे बातें उसके अपने जीवन से सम्बन्धित होती हैं।

तारो का जी चाहता था कि सावित्री कहती ही जाय और वह सुनती ही जाय । लेकिन उसने यह कभी नहीं बताया कि उसकी मा कौन थी ? बाप कौन था ? उसका अगर कभी विवाह हुआ था तो उसका पति कौन था ? उसने उसे क्यों छोड़ दिया ? उसने कभी कुछ नहीं बताया । जैसे उसका किसी से कभी सम्बन्ध ही न रहा हो, जैसे वह बस सावित्री हो । सृष्टि के आरम्भ से एक नारी हो, और वह नारी ही रहेगी ।

लोग उसके सम्बन्ध में एक नहीं बहुत सी कहानियाँ जानते हैं । उसने उनका न कभी समर्थन किया है और न प्रतिवाद । उसे उनसे कोई सरोकार ही नहीं । अफ़वाहें उड़ाना और कहानियाँ बनाना लोगों का काम है । किसी को वे आज बुरा समझते हैं तो बुरी कहानियाँ बना लेते हैं, और कल वे उसे अच्छा समझने लगेंगे तो कहानियाँ भी अच्छी बनायेंगे । इन कहानियों से किसी का कुछ बनता बिगड़ता नहीं ।

सावित्री को अब जाना था इसलिये वह अपने दिलकी बात तारा से कह देना चाहती थी । बात ही बात में उसने कहा "तारा मैं दुखी नारी हूँ । ऊपर से मैं ऐसे रहती हूँ जैसे मुझसे अधिक सुखी और सन्तुष्ट नारी और कोई हो ही नहीं । पर मेरा हृदय चोटीला और लोहू लोहान हो गया है । बार बार धक्के खाकर मेरा विश्वास पुरुष जाति पर से उठ गया है । मैं धर्मपाल सिंह को भला आदमी समझती थी, इसलिये उसके साथ चली आई थी । मगर यहाँ का जो दारुण दृश्य मैंने देखा, राजा और उसके

मुसाहिबों की जिन नोचताओं और कुकर्मों की जानकारी मुझे हासिल हुई उससे मेरा मन घृणा से भर गया। मैं सोचने लगी कि आखिर इन नृशँस अत्याचारों को सहने वाली जनता क्रोध से तिलमिलाती क्यों नहीं, उसके हृदय में प्रतिहिंसा के भाव क्यों नहीं जागते ? मैंने यह भी चाहा कि समय और अवसर निकाल कर धर्मपाल सिंह से मैं इसकी चर्चा भी करूँ। मगर राजा के मुसाहिबों को मेरा यहाँ रहना नापसन्द था। उन्होंने मेरी कन्नी काट दी। मुझे अब अपमानित हो कर जाना पड़ रहा है।

"लेकिन तारो, मुझे इस देश निकाले से सन्तोष है। मैं यहाँ के वातावरण में घुट घुट कर मर जाती। यह देश निकाला क्या हुआ, मुझे मुक्ति मिली। हाँ, इतना मैं कहे जाती हूँ कि धर्मपाल सिंह के पाप का घड़ा भर चुका है। आग अन्दर ही अन्दर सुलग रही है। वह जिस दिन भी भड़केगी सारे राज रियासत को भस्म कर देगी। एक साचो गाँव के ही लोग नाराज़ नहीं हैं। असन्तोष और विद्रोह की आग धीरे धीरे रियासत भर में फैलती जा रही है। राजा के मुसाहिब उसे लोरियों थपकियों के सहारे सुलाये रख रहे हैं। लेकिन एक दिन राजा की आँखें खुलेंगी; परन्तु उस समय तक बहुत देर हो चुकी रहेगी।

"जनता की बढ़ती शक्ति के सामने रियासत की बर्बरता टिक न सकेगी। मेरी आँखें देख रही हैं कि तीतर, बटेर और तरुणियों का शिकार खेलने वाला राजा ख़ुद अपने पापों का

शिकार होने जा रहा है। लेकिन उसे और उसकी रियासत को कोई बचा नहीं सकता। अँगरेज़ी-हिन्दुस्तान का तूफ़ानी बवण्डर रियासत के दामन को झँझोड़ने आ रहा है।

"तारो, मैं तो जाती हूँ। मगर मेरा हृदय तुम्हारे पास अटका रहेगा। कितना अच्छा होता कि मौत के इस पंजे से निकल कर तुम भी स्वच्छन्द वातावरण में चली जातीं। प्रयत्न करना बहन!" कहते कहते सावित्री हाँफने लगी।

आज पहली बार सावित्री इतनी भावुक हुई थी, आज पहिली बार उसने अपने हृदय की सारी बातें एक साँस में कह डाली थीं।

तारो सावित्री की ओर मंत्र मुग्ध सी देखती रही। उसका हृदय धड़क रहा था, एक विचित्र सी सिहरन उसके शरीर में हो रही थी। उसे ऐसी .ख़ुशी हो रही थी जैसे मुक्ति का सँदेशा सुनने वाले विह्वल वन्दी की होती है।

तारो कुछ बोल न सकी। वह आवेश में आकर सावित्री से चिपट गई।

दोनों तीन चार घंटे इकट्ठी रहीं, खाना खाया प्यार और मुहब्बत की बातें कीं। चुपचाप बैठे रहना भी अच्छा लगता था। तारो चाहती थी कि सावित्री अभी न जाय, उसके पास रहे अथवा उसे अपने साथ ले जाय; लेकिन यह सम्भव नहीं था। दूसरी गाड़ी का समय निकट आ गया।

सावित्री जाने के लिए उठ खड़ी हुई। तारो ने भारी स्वर

में आज्ञा दे दी। उसने यह भी नहीं पूछा कि वह कहाँ जायगी। शायद यह पूछने की आवश्यकता ही नहीं थी। क्योंकि तारो जानती थी कि वह कहीं भी जा सकती है। उसके लिये संसार विस्तृत है। सिर्फ वही एक ऐसी मनहूस है जिसके लिये कहीं स्थान नहीं।

सावित्री को विदा करके वह एक खिड़की में जा बैठी। उसका गला भर आया और आँखों से आँसू बह निकले। वह खिड़की में बैठी रही। आँखे शून्य में घूमती रहीं। वह कुछ सोच नहीं रही थी, केवल रो रही थी।

नैना भी एक ओर उदास बैठी थी। दोनों को सावित्री के चले जाने का अफ़सोस था। वह जब से पहाड़ से लौटकर आई थी नैना उससे दो तीन बार मिल चुकी थी। वह कितने प्रेम और शिष्टाचार से मिलती थी! उससे मिल कर मन सुखी होता था।

सावित्री से शायद कभी मुलाक़ात न होगी। यहाँ रहने पर मिलने कि आशा तो थी। अब तो उम्र भर का वियोग हो गया। जब आदमी ख़ुद हमारे पास नहीं रहता तो उसकी अच्छी बातें स्मरण होकर हमारे प्रेम की परीक्षा करती हैं।

तारो के आँसू जम चुके थे। उसकी आँखें शून्य में कुछ खोज रही थीं। अब वह कुछ सोच ही रही थी। उसने गाड़ी के स्टेशन पर पहुँचने का शोर सुना। शोर धीरे धीरे थम गया। गाड़ी स्टेशन पर ठहर गई। और वह देख रही थी कि गाड़ी स्टेशन पर खड़ी है। सावित्री उसमें बैठ गई। अब गाड़ी चली जायेगी। उसकी निगाहें प्लैटफ़ार्म पर घूम रही हैं। शायद वे

तारो को ढूँढ़ रही हैं। वह गाड़ी में बैठकर भी उससे मिल लेना चाहती है। लो, वह एंजिन ने सीटी बजाई। गाड़ी चल दी। फक-फक; फिर शोर सुनाई देने लगा। गाड़ी चली गई। सावित्री चली गई।

"नैना," तारो खिड़की से उछल पड़ी।

नैना उसकी आवाज़ सुनकर चौंकी। तारो उसके सामने खड़ी थी। उसकी आँखें भयानक थीं। चेहरे पर वहशत छाई थी जैसे हिस्टेरिया का दौरा होने वाला हो। लेकिन नैना घबराई नहीं। वह अब तारो को ख़ूब समझ गई थी। जैसे शरीर में देहात का खून था। वह भावनाओं की तीव्रता को सहन करने के लिये काफ़ी मजबूत थी।

"क्या है बेटी?" बूढ़ी दासी ने नम्रता से पूछा।

"मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।" तारो ने एकदम कहा और निगाहें घुमालीं।

बूढ़ी दासी एक क्षण ख़ामोश खड़ी रही। उसने अपने निर्बल शरीर की समस्त शक्ति को बटोरा और फिर एक शब्द कहा—"अच्छा!"

इस एक शब्द में न जाने क्या जादू भरा था कि कमरे के विह्वल वायुमंडल में शान्ति छा गई। तारो ने जब दोबारा आँखें ऊपर उठाई तो उनमें सन्तोष भरा था।

गाड़ी सावित्री को दूर लिये जा रही थी। तारो और नैना को उसके चले जाने का अफ़सोस था और नहीं भी। लेकिन

एक जगह उसके चले जाने पर अवश्य ख़ुशी मनाई जा रही थी। सर पी० एन० मेहता एक औरत को पहलू में लिये बैठे थे। वह शायद उसे यही शुभ समाचार सुनाने आये थे। क्योंकि उन्होंने आते ही कहा था, "बधाई, वह चली गई।"

"कौन ?"

"तुम्हारी सौत।"

"मेरी सौत!" औरत बोली "जाने भी दो, मेरी भी कोई सौत हो सकती है ?"

"हाँ है।"

"कौन ?"

"सावित्री।"

औरत खिलखिलाकर हँस पड़ी। मेहता भी हँस पड़े। औरत बोली, "अच्छा, वह चली गई ?"

"तुम्हारी ख़ातिर," मेहता ने बड़े गर्व से मँझली उँगली से छाती ठोंकते हुए कहा, "राजा को विमुख कर दिया।"

"बहुत अच्छा हुआ।" औरत उछलकर बोली, "अपने आपको बड़ी अफ़लातून की नानी समझती थी।"

"अफ़लातून की नानी तो वह थी। देखा नहीं कैसे कैसे बाँके जवान आते थे।"

"और वह इसमें अपनी शान समझती थी। ओह बड़ी—" वह झिझकी और रुक कर कहा "वह कहीं की।"

'निर्लज्ज' शब्द उस औरत के होंठों पर चिपका रह गया। वह औरत उसी जान थी।

[६]

दिन पर दिन बीतते गये। तारो बाहर से शान्त थी। पर उसके भीतर तूफ़ान उठ रहा था। शुरू शुरू में तो यही विचार सहारा बना रहा कि कर्नैल अभी छुट्टी पर गया है। उसके लौटने पर कोई न कोई साधन बन जायेगा। फिर उसे नैना पर भरोसा था। "अच्छा" की सील ने आशा की सूखी जड़ों में जान डाल दी थी। निराशा के अँधकार में तारो के लिये इस एक शब्द का वही महत्त्व था जो रोशनी का मीनार मंज़िल से भटके हुये किसी जहाज़ के लिये रखता है।

लेकिन तारो अब मंज़िल से दूर पड़ी थी। उसने कल्पना के बल पर मीनार बनाया था। धीरे धीरे कल्पना धुँधली पड़ती गई। मिटते मिटते मीनार मिट गया। उसे फिर मार्ग दिखाई न देता था। क्या जहाज़ तूफ़ान की भेंट चढ़ जायेगा?

तारो का संताप बढ़ने लगा। उसे नैना पर भरोसा नहीं रहा। उसने जाने के सम्बन्ध में कभी कुछ पूछा ही नहीं। दोबारा इस बात का ज़िक्र नहीं छेड़ा। बस अपने काम में लगी रहती है। शायद उसे तारो का कहना याद भी न रहा हो। आख़िर उसे ग़र्ज़ क्या पड़ी थी याद रखने की? इतना भी नहीं कि आश्वासन के लिये तारो के पास बैठी रहे। सारा सारा का दिन

महल से बाहर रहती। न मालूम कहाँ जाती है? क्या करती है? कभी कुछ बताती नहीं। आखिर किया भी क्या होगा? उसके बस का यह रोग ही नहीं—तारो सोचती। जिस तरह कर्नैल का महल में आना सम्भव नहीं उसी प्रकार देह में प्राण रहते मेरा महल से बाहर जाना भी सम्भव नहीं। फिर क्या होगा?"—खिड़की से छलाँग मारकर आत्म-हत्या!

वह सिर से पाँव तक काँप जाती। मन हौल उठता।

यहाँ से विचारों का काँटा बदल जाता। कर्नैल की शक्ल कल्पना-पट पर उभर आती। वह सुखके क्षणों की स्मृति से संताप को दूर भागने की कोशिश करती। लेकिन उसे यहाँ भी यही अफ़सोस होता कि वह इतने दिनों बाग में बेकार क्यों पड़ी रही। कर्नैल से यों खिंचे रहने की आवश्यकता ही क्या थी? जब उसे अपने मन का माही बनाना था तो उससे बात करने में क्या हर्ज था? कितनी मूर्खता थी कि इतना समय वह उसे महज़ देखकर ही संतुष्ट रही, बोलने तक का साहस न किया। और, जब बोल चाल भी हो गई तो दूसरी बातों में समय बिता दिया। अगर जाना ही था तो चलने की बात बहुत पहले जताई होती। कर्नैल के लिये इशारा काफ़ी था। वह अब तक इस संकट से छूट गई होती। उस दिन जब कि वह स्वयं जा रहा था उसे कैसे अपने साथ ले जाता? यह बात तो पहले—बहुत पहले सुझाने की आवश्यकता थी।

तारो इसी असमंजस में पड़ी थी कि बाहर पाँव की चाप

और किसी के खाँसने की आवाज़ सुनाई दी। यह खाँसना नैना का नहीं था और न यह दो पगों की चाप थी। एक से अधिक व्यक्ति कमरे की ओर आ रहे थे। तारो सँभल कर बैठ गई। नैना के पीछे एक वृद्ध आदमी ने कमरे में प्रवेश किया। तारो देखते ही पहचान गई कि वे पंडित जी हैं।

पंडित जी पचास पचपन वर्ष के वृद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने लट्ठे का चूड़ीदार पायजामा और सिल्क की अचकन पहन रखी थी। एक सफ़ेद परना गर्दन के चारों ओर होता हुआ आगे लटक रहा था जो बुज़ुर्गी का प्रतीक होने के अलावा आवश्यकता के समय दक्षिणा का माल बाँधने के भी काम आता था। घुटे हुये सिर पर सफ़ेद साफ़ा बँधा था। उसके नीचे लाल पगड़ी माथे पर विशेष रूप से दीख पड़ती थी। पगड़ी के ज़रा नीचे चन्दन का सफ़ेद टीका था। जो भवों और मूछों के सफ़ेद बालों से मिलता जुलता था। उनकी आँखें अधखुली थीं। चेहरे की सिलवटों में भक्ति और शान्ति विराजमान थी।

पंडित जी राज पुरोहित थे। उन्हें राज दरबार से तीस रुपया महीना वेतन मिलता था। इसके अलावा देवी के मंदिर का चढ़ावा और समय-असमय मिलने वाले दान दक्षिणा की आमदनी इस वेतन से कई गुणा अधिक थी। वे नित्य प्रति सुबह और शाम देवी के मंदिर में धूप देते और जोत जगाते। सप्ताह में दो बार जेल में जाते। वहाँ अभागे क़ैदी उनसे धर्म का उपदेश सुनते और सन्तोष से जीवन बिताना सीखते।

इसी प्रकार वह सप्ताह में दो बार राज भवन में आते और हिस्टोरिया की बीमार रानियों को पति सेवा और सतीधर्म का उपदेश देते।

तारो का कमरा पंडित जी के पुनीत चरणों से पहिली बार पवित्र हुआ था। वे किसी और रानी के रहते वहाँ आये हों तो आये हों पर तारो ने उन्हें पहली बार देखा था। उसने मुश्किल से छः सात महीने वहाँ गुजारे थे। उस समय उसमें जवानी का जोश था। रानी बनने की ख़ुशी थी। जोश और ख़ुशी के रहते किसी उपदेश की आवश्यकता नहीं थी। फिर वह बाग़ में जाकर बीमार पड़ गई। अब लौट कर आई है तो सारा जोश सर्द पड़ चुका है। रानीपन का भूत सिर से उतर चुका है। वह निराश रहती है। उसे आश्वासन चाहिये।

"पंडित जी! यह हैं छोटी रानी। हर वक्त उदास रहती हैं। इन्हें कोई ऐसा उपदेश दीजिये जिससे इनका मन बहले।" नैना ने तारो के समीप एक चौक रख कर उस पर ग़लीचा बिछाते हुये कहा।

"उदास होने की कौन बात है?" पंडित जी चौकी पर विराजते ही बोले, "उदास वह हो जिसकी तकदीर खोटी हो। इन्हें तो भगवान ने रानी बनाया है।"

तारो भीतर ही भीतर जल भुन रही थी। वह पंडित जी की शक्ल तक देखना नहीं चाहती थी। लेकिन उसे अधिक क्रोध नैना पर आ रहा था। अगर उसने अपने मन की बात कही थी

तो इसका मतलब यह नहीं था कि वह बूढ़े खूसट पंडित जी को उठा लाती। क्या वह यहाँ पड़ी पड़ी इन्हीं के उपदेश सुना करेगी ?

पंडित जी ने बात छेड़ी तो वह उन पर बरस पड़ी और छूटते ही बोली, "पंडित जी, पहले यह बताइये कि मैंने भगवान का क्या बिगाड़ा था, उसने किस जन्म केपाप का बदला लिया है कि मुझे रानी बना दिया ?"

उसका स्वर निर्भीक और कड़ुवा था। मगर पंडित जी ने स्वर की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने होठों पर हल्की सी मुस्कराहट उत्पन्न की, पलकों को तनिक जुंबिश दी और फिर गर्दन हिलाते हुये दार्शनिक ढंग से कहा, "बेटी, भगवान की माया को समझना कठिन है। हम सब भगवान की सन्तान हैं। उन्हें सबके सुख दुख का ध्यान रहता है। रानी बनना पाप का बदला कैसे है ? यह तो कई जन्मों के पुण्य का फल है। तुम्हें संसार के झंझटों से फ़ुर्सत मिली है। पूजा पाठ में समय लगाओ। दान करो। खूब धर्म कमाओ। दान धर्म की कमाई से मुक्ति मिलती है। इस लोक में स्वर्ग भोग रही हो। परलोक में स्वर्ग मिलेगा।"

पंडित जी बोल रहे थे। तारो चुप बैठी थी और गर्दन झुकाये सुन रही थी। उन्होंने आंखों कोनों से उसकी ओर देखा और अनुमान लगाया कि मंत्र काम कर रहा है। वे फिर बोले—"मैं तुम्हें वह उपदेश सुनाता हूँ जो ऋषि पत्नी

अनुसुइया ने माता सीता को सुनाया था। उपदेश की महिमा बड़ी है। माता सीता ने यह उपदेश सुना था। तुम ध्यान से सुनोगी तो तुम्हें भी शान्ति मिलेगी।"

उन्होंने जुज़दान से तुलसीकृत रामायण निकाली। वह उनके हाथ में आते ही एक विशेष पन्ने पर खुल गई। चौपाई पढ़ चुकने के अनन्तर उसका अर्थ इस प्रकार किया—"अनुसुइया जी ने माता सीता को समझाया। सती नारियाँ तीन प्रकार की होती हैं एक सती वह है जो पर पुरुष का भूले से भी ध्यान आने पर सौ बार प्रायश्चित्त करती है। दूसरी सती वह है जो पति के अतिरिक्त बाक़ी सब मर्दों को भाई और पिता के समान समझती हैं। तीसरी और सबसे उत्तम सती वह है जो पराये मर्दों को मर्द ही नहीं समझती।"

राम और सीता में तारो की धार्मिक श्रद्धा थी। रामायण की कथा उसने सुन रखी थी। मगर उसे पुस्तक रूप में पहली बार देखा था। उसे पहली बार मालूम हुआ था कि उसमें उपदेश भी होते हैं। वह अत्यन्त उत्सुकता से सुन रही थी। जब पंडित जी ने इतना ही सुना कर रामायण बन्द करदी तो उसे यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने बड़े ही सहज और सरल भाव से पूछा, "पंडित जी, आगे पढ़िये। जब इसमें पत्नी का धर्म लिखा है तो पति का भी लिखा होगा?"

"लिखा क्यों नहीं? लिखा सब कुछ है। पर आदमी को दूसरे के धर्म से क्या मतलब? वह अपने धर्म का पालन करे

उसे उसका फल मिलता है।"

उन्हें एकांगी बात करते देखकर तारो को उनकी पंडिताई में शक हो गया और उसका साहस बढ़ा, "पंडित जी, राम के एक सीता थी। वह उसे भी बन में साथ ले गये थे।"

"यह तो ठीक है।" पंडित जी की गर्दन विद्वता के भार से हिल रही थी। उन्हें जब विरोधी सम्मति को काटना होता था तो उनकी गर्दन आप ही आप हिलने लगती थी। "पर दशरथ के तीन रानियाँ थी और श्रीकृष्ण महाराज के सोलह सौ।"

अगर तारो भी पंडित जी की तरह विद्वान होती तो उनकी दलील को सच मानते हुये भी यह कह सकती थी कि उसका परिणाम कुछ अच्छा तो नहीं निकला। दशरथ जी ने तड़पकर प्राण दिये और कृष्ण जी का सारा कुल आपस में लड़कर नष्ट हो गया। मगर वह अपढ़ देहाती लड़की थी। उसने कोई भी बात बहस के उद्देश्य से नहीं कही थी। उसका सिर श्रद्धा से झुक गया। पंडित जी ने लोहा गर्म देखकर और चोट की, "मैं दलील के लिये नहीं कहता बेटी। धर्मशास्त्र की बात कहता हूँ। औरत और मर्द में बड़ा भेद है। मर्द को भगवान ने सोने का पात्र बनाया है। उसमें चाहे कुछ खाओ, कुछ पिओ, पवित्र ही रहता है। पर औरत मिट्टी का बर्तन है जो जूठा हाथ लगने से ही अपवित्र हो जाता है। उसे तोड़ ही देना पड़ता है।"

तारो सारी उम्र गोबर उठाती रही थी। उसे पंडित जी का यह दृष्टान्त गोबर से भी ग़लीज़ लगा। लेकिन उनके कथना-

नुसार यह शास्त्र की बात थी। ब्राह्मण और शास्त्र जो कहें मानना पड़ता है। ये संस्कार तारो पर अधिक प्रभाव न रखते हों फिर भी यह प्रभाव इतना कम नहीं था कि वह कह देती—"यह बात कहीं भी लिखी हो मैं नहीं मान सकती।"

"भगवान ने राजा को सामर्थ्य दिया है। वह दस, बीस सौ, हजार, जितनी चाहे रानियाँ रखे। राजा का शरीर पवित्र है। उसकी पूजा आदमी का धर्म है। मनु जी महाराज कहते हैं कि राजा का शरीर आठ देवताओं के अंश से बना है। जो उसका आदर नहीं करता, आदेश नहीं मानता उसकी देह में कीड़े पड़ते हैं और वह नराधम नरक गामी होता है। बेटी, तुम अपने भाग्य को सराहो कि तुम राजा की रानी बनी हो। मन, वचन और कर्म से उसकी पूजा करोगी तो मुक्ति पाओगी।" पंडित जी ने अन्तिम उपदेश किया।

उपदेश समाप्त हुआ। पंडित जी दक्षिणा लेकर चले गये। तारो दुविधा में पड़ गई। धर्म, शास्त्र, भक्ति और स्वर्ग उसके कानों में गूँज रहे थे। यही शब्द हैं जिनके कारण ब्राह्मण आज भी लाखों करोड़ों व्यक्तियों पर शासन कर रहे हैं। बड़ी बड़ी सलतनतें बनीं और मिट गईं। पर उनका शासन वैसे का वैसा क़ायम है। सदियों के प्रचार ने इन शब्दों को तीर, तोप और गोला-बारूद से भी अधिक बल प्रदान कर दिया है। उनके पीछे संगठित शक्ति काम कर रही है। भूत के मृतक हाथ ने वर्तमान को जकड़ रखा है। तारो भी उसकी पकड़ से बाहर नहीं थी।

उसके मन में प्राचीन रीति रिवाज और धर्म ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा थी। अगर उसका आचरण कभी उनके विरुद्ध रहा हो तो इस-लिये नहीं कि उसे उनकी सच्चाई पर विश्वास नहीं था। बल्कि उसका कारण अज्ञान था।

जितनी देर पंडित जी तारो की आँखों के सामने रहे उस पर उनके उपदेश का असर उतना नहीं हुआ जितना वे समझते थे। उन्हें देखते ही वह चिढ़ गई थी। जितनी देर पंडित जी कमरे में उपस्थित रहे तारो को जाने-अनजाने यह संदेह होता रहा कि वे कुछ न कुछ ठगने आये हैं और उसे अपनी रक्षा करनी है।

पंडित जी के चले जाने के पश्चात् शब्द—अस्थूल शब्द रह गये। उनसे रानी को भय नहीं था, सावधानी की आवश्यकता नहीं थी। तारो ने भीतर की सब खिड़कियाँ खोल दीं। शब्द पूर्ण शक्ति से अन्दर घुसने लगे! उनका प्रभाव क्षण-क्षण बढ़ने लगा। जिस प्रकार एक दिन "रानी" शब्द ने उसके मन में सांसारिक सुख और ऐश्वर्य की अभिलाषा सजग कर दी थी उसी प्रकार "मुक्ति" और "स्वर्ग" ने सुन्दर परलोक निर्माण कर दिया। उसने दूर ही से परलोक में झाँक कर देखा और गहरी साँस ली।

उसे कुछ आश्वासन मिला। जिस प्रकार मिठाई के लिये हठ करने वाला नादान बालक "मामा आयेंगे, खिलौने लायेंगे" कहने ही से बहल जाता है और मिठाई का खयाल छोड़ कर

रंगीन खिलौनों ही की कल्पना में खो गई । उस पर हर एक विचार धारा का प्रभाव बहुत ही तीव्र होता था । और. जब इस विचारों में बचपन के संस्कारों को दखल हो वह अपने आप में नहीं रहती थी ।

"स्वर्ग" की शिक्षा उसे घुट्टी में मिली थी । इस लोक में आते ही परलोक का निर्माण होने लगा था । उसने उन साधु सन्तों को देखा था जिन्होंने परलोक के मोह में संसार को तज दिया था । वह उनकी तरह दुनियाँ में अपना सब कुछ त्यागकर भी अपने आप को स्वर्ग प्राप्ति के योग्य न कर पाई थी । आज पंडित जी ने परलोक-पथ दिखा दिया था, "दान पुण्य करो । धर्म कमाओ । धर्म की कमाई से मुक्ति मिलती है । यहाँ भी स्वर्ग भोग रही हो, आगे भी स्वर्ग मिलेगा ।"

वह कितनी ही देर इन शब्दों के जादू में खोई रही । उन्हें मन ही मन में दुहराती रही, "यहाँ भी स्वर्ग है और आगे भी स्वर्ग मिलेगा ।" उसे कुछ भी तो खोना नहीं पड़ा । "यहाँ भी स्वर्ग है ।"

वह अचानक रुक गई । उसे एक धक्का सा लगा । वह जहाँ बचपन से स्वर्ग की कल्पना करती आई थी वहाँ बचपन ही से अपने मन में एक ऐसे माही को सँजोया था जिसे वह प्यार कर सके, जो उसे प्यार कर सके । वे एक दूसरे की ओर देखकर आँखों की भाषा में बातें कर सकें । परस्पर रूठ सकें । एक दूसरे

को मना सकें । खूब हंगामें बरपा हों। उसके स्वर्ग का विशेष भाग इस माही के चारो ओर घूमता था। लेकिन वह माही इस स्वर्ग में नहीं था। क्या वह माही आगे मिलने वाले स्वर्ग में भी नहीं होगा ?

कल्पना अप्रतिभ हो गई। तारो ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि नैना पर डाली जैसे कह रही हो, "तूने मुझे किस झंझट में डाल दिया ? मैं यह स्वर्ग नहीं चाहती। अगर आगे भी ऐसा ही स्वर्ग मिलना है तो मुझे वह भी नहीं चाहिये। मैं अपने माही के संग नरक में भी ख़ुश रहूँगी।"

नैना ख़ामोश बैठी रही। वह इस इच्छा से पंडित जी को लाई थी कि तारो का ध्यान कुछ बदल जाय। उसे कुछ शान्ति प्राप्त हो। वह जाने की चिन्ता में हर वक्त घुलती न रहे। इस बात में वह सफल भी रही। चिन्ता में घुलते रहने से असमंजस में पड़े रहना अच्छा था। वह कुछ नहीं बोली।

कमरे में पूर्ण निस्तब्धता थी जो प्रतिक्षण गहरी होती जा रही थी। तारो के लिए यह ख़ामोशी असह्य थी। वह उठकर बाहर चली गई। कुछ देर इधर उधर घूमती रही। बाईं ओर सीढ़ी थी। वह अनमनी सी उस पर चढ़ने लगी और छत पर चढ़कर आकाश की ओर यों देखा जैसे स्वर्ग और नरक को समीप से देख लेना चाहती हो। मगर उसे नीले आकाश के अतिरिक्त जो ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा था और कुछ दीख न पड़ा।

थकी हुई निगाहें फिर धरती की ओर लौट आईं। नीचे शहर

बसा था। मकानों से धुआँ उठ-उठकर इधर उधर फैल रहा था। वह यथार्थ को भी कल्पना का रंग देना चाहता था। महल सब मकानों से ऊँचा था। तारो को महल की छत पर से सब मकान घरौंदे से मालूम होते थे। सिर्फ शहर के चारों कोनों और मकानों के बीच में बने हुये मंदिर ऊँचाई में महल का मुक़ाबिला करते थे। महल और मंदिर—राजा और धर्म—समस्त संसार पर छाये हुये मालूम होते थे।

[७]

कर्नैल की याद अब तारो को कम सताती थी। वह उसके प्रेम को भी श्रवण के प्रेम की तरह बीते दिनों की भूली बिसारी बात बना देना चाहती थी। जब कभी उसकी स्मृति मन में उभरने लगती वह पंडित जी के उपदेश का ध्यान करती। धर्म और शास्त्र उसे परलोक के सब्ज़ बाग़ दिखाते। वह सोचती, कहती और अपने चारों ओर कमरे की दीवारों के अतिरिक्त धर्म की दीवारें खड़ी कर लेती। क्षुब्ध आत्मा इन दीवारों में आश्रय ढूँढ़ती। निराश अभिलाषा को सहारा मिलता। आगे इतना अंधकार था कि कुछ भी सुझाई नहीं देता था। खिड़की से कूद जाने के सिवा महल से भाग निकलने का और कोई रास्ता नहीं था। वह जितना अपने आपको विवश और निराश पाती धर्म और शास्त्र में उसका विश्वास उतना ही दृढ़ होता जाता, गोया, विवशता का दूसरा नाम ही विश्वास है।

पंडित जी के कथनानुसार वह सती का जीवन व्यतीत करे

अथवा इस नरक से बच निकलने के लिये जीवन की बाज़ी लगा दे ? कई दिन तक वह इस बात का निर्णय न कर सकी। कम से कम वह समझती यही थी कि उसने अभी कोई निर्णय नहीं किया वह अपने आपको झुठला रही थी। वास्तव में वह इस बात का निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुकी थी और अपना यह निर्णय नैना को सुना चुकी थी—"मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।"

अगर नैना अभी आकर कहती—"कर्नैल बाहर खड़ा है। महल से तुम्हारे बाहर निकलने का प्रबन्ध मैंने कर दिया है। चलो जल्दी चलो !" तो वह फ़ौरन उठ कर तैयार हो जाती।

फिर भी वह समझती थी कि उसने कोई फ़ैसला नहीं किया। अंतःकरण में झाँकते भय लगता था। उसमें कसक भरी थी जिसकी टीस से सारा शरीर थर्रा उठता था। इसी कसक के कारण वह रात सो नहीं सकी। उसे जमुहाइयाँ आ रही थीं। आँखें बोझिल थीं। वह पलङ्ग पर पड़ी करवटें ले रही थी और सोच रही थी—नैना सुबह से बाहर गई है। अभी तक क्यों लौट कर नहीं आई ? सोचते सोचते उसे नींद आ गई। दो ढाई घंटे बेसुध सोती रही। जब नींद कुछ कम हुई तो स्वप्न देखने लगी।

कर्नैल और वह बहुत दूर किसी गाँव में रहते हैं। उनके पास घर और ज़मीन है। गाय, भैंस और बैल हैं। कर्नैल हल चलाता है। वह दूध बलोती है। एक बच्चा है जिसे वे दोनों खूब प्यार करते हैं। वह बच्चे को साथ लिये सो रही है। बच्चा जाग उठता

है और रोने लगता है। कर्नैल कहता है, "तू उसे चुप क्यों नहीं कराती ?"

तारो की आँख खुल गई। उसके पहलू में तकिया पड़ा था जो उसने लेटते समय छाती तले रख लिया था।

नीचे बाज़ार में शोर सुनाई दिया। वह उठ कर चिक की ओट में आ बैठी। दाईं ओर से एक जुलूस आ रहा था। जुलूस में जो लोग शामिल थे उनके पास झंडे थे और कहीं कहीं दो आदमियों के हाथों में बाँसों पर तने हुये कपड़े थे जिन पर मोटे मोटे अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। वे चार चार की पंक्ति में चल रहे थे और बुलन्द आवाज़ में कुछ चिल्ला रहे थे। उनके नारे तारो समझ नहीं सकी पर उनमें ज़िन्दगी ज़रूर देख रही थी। उनमें से अधिकांश मैले कुचैले और कई एक साफ़ और सादा कपड़े पहने हुये थे। उन सब के चेहरों से जोश और हिम्मत टपकती थी।

चिक के नीचे बाज़ार का छोटा चौक था। जुलूस वहाँ पहुँच कर रुक गया। आगे की पंक्ति से गोरे रंग और ठिंगने क़द का एक नौजवान बाहर निकला और बिजली के खम्बे के पास खड़ा होकर बोलने लगा।

"भाइयो ! हम मनुष्य हैं, हम अपनी कोशिशों से दुनियाँ को बदल सकते हैं। हम चाहें तो उसे स्वर्ग बना दें। भगवान ने किसी को छोटा बड़ा नहीं बनाया। हमारे शरीर में वही रक्त है जो राजा के शरीर में। राजा प्रजा का ज़माना गुज़र गया। अब

नया ज़माना है। हम नया राज— लोकराज चाहते हैं। हम राजा के ज़ुल्मों को अब नहीं सह सकते। प्रजा मण्डल ने ज़िम्मेदार सरकार की माँग रखी है। हम राजा से अपना हक़ चाहते हैं। अगर राजा हमारी माँग पूरी नहीं करेगा तो हम बग़ावत करेंगे। हम किसी से डरते नहीं......... ।"

वह बोल ही रहा था कि सामने से पुलिस आ गई। इधर उधर से जो लोग जमा हो गये थे वे खिसकने लगे। जुलूस वाले भी कुछ कुछ घबराये। पर वे अपनी अपनी जगह खड़े रहे। नौजवान ने पहले से अधिक जोश के साथ कहा, "मज़हब और राज्य के नाम पर हमारा ख़ून चूसा जा रहा है। लेकिन मैं बता देना चाहता हूँ कि मज़हब और हुकूमत इन्सान के लिये बने हैं। इन्सान मजहब और हुकूमत के लिये नहीं बना......... ।"

पुलिस के सिपाही भूखे भेड़ियों की तरह जुलूस पर झपटे। लाठियाँ बरसने लगीं। लोग पिट पिट कर दौड़ने लगे। जुलूस बिखर गया। झण्डे फाड़ दिये गये। लेकिन नौजवान चिल्लाता रहा, "भाग कर मत जाओ। यहीं लाठियों के नीचे जान दे दो।"

एक लाठी उसके सिर पर पड़ी। खून बहने लगा। "हम पर ज़ुल्म होता है। हम उसके विरुद्ध आवाज़ उठायेंगे।" वह हिम्मत से बोला, "ठहरे रहो। यहीं जान दे दो।"

लेकिन उसकी आवाज़ किसी ने नहीं सुनी। जुलूस बिखर गया। उस पर लाठियाँ पड़ती रहीं और वह चिल्लाता रहा। वह

जब ज़मीन पर गिर पड़ा तो पुलिस टाँगे में डालकर साथ ले गई ।

तारो आँखें फाड़ कर सारा दृश्य देखती रही। उसका भी खून गरम हो रहा था। पुलिस की निर्दयता देख कर वह दाँत पीस रही थी, नौजवान जब ज़मीन पर गिर गया तो तारो के मुँह से चीख़ निकल गई।

वह समझ नहीं सकी कि वह नौजवान कौन था, क्या कह रहा था और क्या चाहता था। एक बात स्पष्ट थी कि वह .ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद कर रहा था। "राजा और प्रजा का ज़माना गुज़र गया।" "हमारा खून चूसा जा रहा है।" दो चार वाक्य उसने भी सुन और समझ लिये थे। अनुमान लगाया था कि वे लोग राजा के विरुद्ध थे। पुलिस की लाठियों ने उन्हें ख़ामोश कर दिया। पुलिस .खून चूसने वालों के साथ है। राजा के साथ है। वह उसके विरुद्ध किसी को बोलने तक नहीं देती।

तारो को नौजवान और उसके साथियों से हमदर्दी थी। उन्हें पिटते देखकर उसे कठोर आघात पहुँचा था। उनके शरीर पर बरसने वाली लाठियाँ उसके दिल पर बरस रही थीं। जब पुलिस नौजवान, को लेकर जाने लगी तो उसके जी में आया कि वह ज़ोर से चिल्लाये। राजा को जी भर के कोसे। शायद तारो नौजवान को कुछ कुछ पहिचान रही थी। बार बार उसे लगता कि कहीं यह नौजवान श्रवण तो नहीं था।

तारो ने किसी को कहते सुना था कि यह जुलूस है। एक

वह भी जुलूस था जो उसने जुबली के उत्सव पर देखा था। उसमें हाथी थे, मोटरें थीं और बैंड था। इसमें झंडे और नारे थे। पहले का मतलब ऐश्वर्य और शक्ति का प्रदर्शन करके लोगों के मन पर राजा का आतंक जमाना था। दूसरे का अभि-प्राय अत्याचार और आतंक से टकरा कर दिलों पर से राजा का दबदबा कम करना था। वहाँ पंडितजी राजा के संग हाथी पर बैठे थे। उन्हें भी राजा के सदृश उच्च पद पर बैठाया गया था क्योंकि वे शास्त्र की बात कहते थे।

"राजा का शरीर देवताओं के आठ अंश से बना है। राजा का आदेश न मानने वाला नरक में जाता है। "राजा की आज्ञा का पालन करना हम सब का धर्म है।"

इधर नौजवान पर लाठियाँ बरसाई गईं। उसे मार मार कर बेहोश कर दिया गया क्योंकि वह शास्त्रों को नहीं मानता था, क्योंकि वह झूठ कह रहा था कि राजा और प्रजा का ज़माना गुज़र गया।

ज़माना गुज़र गया होता तो उस पर लाठियाँ कैसे पड़तीं?

इस घटना ने तारों को झंझोड़ कर रख दिया। उसके भीतर ऐसी हलचल मच गई जैसे पानी के अन्दर भारी पत्थर फेंक दिया जाय। अन्तःकरण की गहराइयों में दबे हुये विचार ऊपर उभर आये। शान्त सतह पर तूफ़ानी लहरें दौड़ने लगी। उसे क्रोध आरहा था। अगर उस वक्त नैना सामने आ जाती तो वह उस पर बरस पड़ती, "तुमने 'अच्छा' कहा था। क्या किया है अब तक? अगर

कुछ नहीं करना था तो तुम भी मुझसे साफ़ कह देतीं। मैं कुछ न बोलती।"

उस कल्पित श्रवण के लिये उसका दिल रो रहा था। उसका मन राजा के विरुद्ध विद्रोह कर रहा था। वह परिस्थितियों से लड़ रही थी। वह इसी समय महल से भाग जाना चाहती थी। उसने एक गहरी लम्बी साँस ली और नीचे की ओर देखा।

कर्नैल नीचे से चिक की तरफ़ देखता हुआ बाजार में से गुजार रहा था। वह आगे बढ़ता गया। तारा उसे देखती रही कर्नैल की आँखों में हसरत भरी थी। वह उसे खोज रहा था। जब वह नज़रों से ओझल होने लगा वह उस समय उसे पुकार कर वापस बुला लेना चाहती थी। मगर उसकी आवाज़ गले में अँटक गई। कर्नैल आगे बढ़ता गया। वह उसे बुला नहीं सकती थी। उसके पास जा नहीं सकती थी। नैना भी मौजूद नहीं थी कि उसके द्वारा सन्देशा भेज देती। कर्नैल से दो बातें ही कर आती।

ठीक उसी समय उधर ड्योढ़ी सरदार नैना से कह रहा था—"तू चाभी माँगने आई है। कहीं कुछ गोल माल तो नहीं है?"

गोल माल क्या होगा? तुम्हें बता तो दिया। छोटी रानी बीमारी से उठी हैं। उनकी तबीयत ख़राब रहती है। डाक्टर ने कहा है कि सुबह शाम दो घंटे खुली हवा में घूमा करें।" नैना के स्वर में तेजी थी। "विश्वास न आता हो तो जाकर डाक्टर से पूछ लो।"

"पूछ न लूँगा डाक्टर से। मैं तुम्हारे त्रिया-चरित्र को ख़ूब जानता हूँ।" सरदार ने मूँछे मरोड़ते हुये व्यङ्ग किया। उसकी आँखों से शरारत टपक रही थी।

सरदार विशालकाय व्यक्ति था। अगर पेट तनिक वाहर को न निकला होता तो उसके शरीर को वेडौल नहीं कहा जा सकता था। उसकी आयु पचास पचपन वर्ष से अधिक ही थी। अपने से बड़े अफ़सरों के सामने वह भीगी बिल्ली बना रहता था। दासियों और लोगों के सामने चुस्त चालाक दीख पड़ता और ख़ूब रोब गाँठता। मूछों को ताव देकर रखता। उसकी आँखों में वहशत, शरारत और शराफ़त तीनों के लिये कुछ इस प्रकार स्थान बना था कि वह जिसको जब चाहे प्रकट कर सकता था। उसके मातहत आठ और बूढ़े सरदार काम करते थे। अगर यह कहावत सच है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है तो इन छोटे सरदारों का चलन बड़े सरदार से भिन्न होना सम्भव नहीं था। वे देखने को मरियल टट्टू बने रहते थे वैसे पौष्टिक भोजन और नवजीवन दायक टानिक इस्तेमाल करते थे।

नैना जवानी में काफ़ी सुन्दर थी। रियासती अफसर उसके वैधव्य के चारो ओर यों मँडराया करते थे जैसे गीदड़ शव के गिर्द मंडराया करते हैं। उसका पति फ़राशखाने में बीस रुपया महीना पर मुलाजिम था। उसकी जिन्दगी ही में इन अफ़सरों ने डोरे डालने आरम्भ कर दिये थे। लेकिन उस समय नैना अपने आपको बचाती रही।

पति की मृत्यु के अनन्तर जीविका का भी सहारा न रहा। फिर, ये भूखी आँखें उसके कोमल शरीर को निगल जाने के लिये तैयार थीं। आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई चारा न था। उस समय सरदार हमीर सिंह बड़ा मंत्री था। उसका रोब दाब था, नैना ने उसकी शरण ली। वह हर एक सुन्दर नारी को शरण देने के लिये तैयार था। छोटे अफ़सर कान दबोच कर रह गये। दस पन्द्रह साल बाद नैना उसी की कृपा से महल में दासी बनकर आई थी। वह सब अफसरों को अच्छी तरह जानती थी। उसके मन में किसी की इज्जत नहीं थी; किसी का रोब नहीं था। ड्योढ़ी सरदार की बात सुन कर उसे क्रोध आ गया और चोट खाये हुये साँप की तरह फुफकारती हुई बोली, "तुम त्रिया चरित्र जानते हो तो मैं भी तुम्हारे रग रंग से परिचित हूँ। जैसा कहोगे वैसा सुनोगे। जबान सँभाल कर बोलो।"

"अधिक चर चर लगाई तो गुद्दी से ज़बान निकाल लूँगा।" सरदार ने लाल पीली आँखें दिखाई, "यह चुड़ैल मुझे धमकाने आई है। हाँ सुना, क्या सुनायेगी मुझे।"

नैना डरी नहीं, सहमी नहीं। वह उसी तरह निर्भीक खड़ी रही जिस तरह सशस्त्र सिपाही आक्रमणकारी के सामने डट कर खड़ा रहता है। जब सरदार कह चुका तो बड़े इत्मीनान से बोली—"मैं सुनाऊँगी कि महल में जो रहती हैं वे भगतनियाँ नही, साधुनियाँ नहीं, औरतें हैं, औरतें। मिट्ठी रानी जब चाहें क्यों तुम्हारे पास आ धमकती हैं? भदोड़ वालो से

किसकी मुलाकातें कराई जाती हैं ? और मँझली की बाँदी से क्या बातचीत होती है·········?

अभी न जाने और क्या कुछ सुनना पड़ता कि सरदार ने बीच ही में टोक दिया—"क्यों ज़ोर ज़ोर से बोल रही है ? दूसरा कोई सुने तो सब कुछ सच ही समझे।" उसके स्वर में नम्रता आ गई थी।

"सच नहीं तो क्या मैं झूठ कहती हूँ ?"

"सब, सच—बिलकुल सच।" सरदार ने हार मानी।" "आख़िर तू चाहती क्या है ?"

"चाभी !"

उसने चाभी निकालकर मेज़ पर रखदी। नैना उसे उठाकर चुपचाप लौट आई। सरदार के लिये धन्यवाद का शब्द तक नहीं कहा। कृतज्ञता के नाते उसकी ओर देखा तक नहीं।

[८]

महल लम्बा चौड़ा था। वह लगभग शहर के आधे विस्तार में फैला हुआ था। उसका विशेष भाग वह था जिसमें रानियाँ रहती थीं। इस भाग में सैकड़ों कमरे थे और हर कमरे में हजारों रुपयों का फ़र्नीचर था। इन कमरों में रहने वाली रानियों के लिये भोजन का अलग अलग प्रबन्ध था ताकि हर एक रानी मन चाही चीज़ बनवाये और खाये। किसी को शिकायत की गुँजायश ही न रहे।

महल के दक्षिण और पच्छिम की ओर बाज़ार थे और उत्तर में कुछ घर। पूर्व में महल और दूसरी शाही इमारतें फैली हुई थीं। इसी ओर रानियों के कमरों के आगे विशाल आँगन था जो शायद राजकुमारों और राजकुमारियों के खेलने के के लिये बनाया गया था। इस आँगन के उत्तर पश्चिम में दीवारों साथ जो छोटे छोटे कमरे थे उनमें दासियाँ रहती थीं। सामने की दीवार के ठीक मध्य में ड्योढ़ी थी जिसमें कुछ कमरों में सरदार का दफ़्तर लगता था।

ड्योढ़ी के दायें बायें दो छोटे छोटे दरवाजे. थे। दाईं ओर का दरवाज़ा दीवानख़ाने में खुलता था। दीवानख़ाना बहुत शानदार बना था। किसी समय यहाँ दरबार लगते थे। रियासत के इतिहास में कोई दिन ऐसा भी तो रहा होगा जब राजा प्रजा की शिकायतें अपने कानों से सुनता होगा।

राजसी ठाठ के सब सामान दीवानख़ाने में मौजूद थे, लेकिन दरवाजे बँद पड़े थे। अगर बाहर से कोई सज्जन आते और उनके मन में सैर का शौक़ उत्पन्न होता तो सँतरी दरवाजा खोल कर उन्हें दीवानख़ाना दिखा देता। अगर कोई सज्जन भूल से पूछ बैठते कियहाँ तख़्ते-ताऊस के नमूने का जो राजसिंहासन रखा है उस पर राजा कभी बैठता भी है अथवा नहीं? तो सन्तरी अपना अज्ञान प्रकट करता।

दीवानख़ाने की इमारत से कुछ क़दम के फ़ासले पर एक और इमारत थी जिसमें रियासत का एक मात्र पुस्तकालय

और अजायब घर स्थित था। पुस्तकालय में सब प्राचीन ग्रन्थ उपस्थित थे। वेद उपनिषद, मनुस्मृति, बाल्मीकि रामायण, महाभारत और गीता अलमारियों के अन्दर रेशमी कपड़ों में लपेट कर रखी हुई थीं। फ़ार्सी में गुलस्ताँ, बोस्ताँ, हिन्दी उर्दू में चन्द्रकान्ता और गुलबकावली आदि के क़िस्से और चन्द शायरों के दीवान मिलते थे। अंग्रेज़ी में महारानी विक्टोरिया के युग तक सब कवियों और चार्ल्स डिकेन्स आदि उपन्यासकारों की कृतियाँ मौजूद थीं। उसके पश्चात जो कवि और साहित्यकार हुये उनके ग्रन्थ मँगवाने की दरख़ास्त अभी तक मन्जूर नहीं हुई थी।

यही पुस्तकालय अजायब घर भी था। दीवारों पर राजा प्रणपाल सिंह, वीरपाल सिंह, और पृथ्वीपाल सिंह धर्मपाल सिंह की बड़ी बड़ी तस्वीरें लगी हुई थीं। तस्वीरों के एक ओर एक ढाल और तलवार भी लटक रही थी। शायद इसी ढाल-तलवार के बल पर राजा धर्मपाल सिंह के किसी पूर्वज ने यह रियासत स्थापित की थी।

नीचे फ़र्श पर बन्द आलमारियाँ पड़ी थीं, जिनमें रियासत का इतिहास और शासकों की हस्तलिखित जीवनियाँ खुली रखी थीं। वे शीशों में से देखी जा सकती थीं। एक कोने पर शेर बबर खड़ा था जिसे धर्मपाल सिंह के किसी पुरखे ने शिकार किया था। खाल उतार कर उसमें भूसा भर दिया गया था और उस समय से अब तक यहीं रखा था। शेर के निकट ही एक आलमारी में कोई गज़ भर लम्बी मछली रखी थी जिसे खुद

राजा धर्मपाल सिंह ने पकड़ा था और उसे भी प्रदर्शन के लिये सुरक्षित रखा गया था।

बाहर से आने वाले लोग यह सब चीजें सहर्ष देख स ते थे। वे महल में से दाईं ओर के छोटे दरवाजे के रास्ते नहीं सदर दरवाजे के रास्ते भीतर प्रवेश करते थे।

बाईं ओर का दरवाजा साथ वाले बाग़ में खुलता था। वह कभी रानियों के भ्रमण और मनोरञ्जन के लिये था। यह बाग़ जितना छोटा था उतना ही सुन्दर। छोटी छोटी क्यारियों में बूटे लगाये गये थे जिनमें मौसम के अनुसार फूल खिलते थे। कुछ बूटे ऐसे भी थे जो हर मौसम में फूलते थे। क्यारियों के बीच बीच रविशें बनी थीं। जहाँ चार रविशें आकर मिलती थीं वहाँ एक कुंज बना था जो पुष्पों और लताओं से ढँका हुआ बहुत ही भला मालूम होता था। हर एक कुंज में बैठ कर आराम करने का प्रबन्ध था। बूटों के अतिरिक्त सरो के पाँच छः पेड़ इस ढङ्ग से लगाये गये थे कि वे सुन्दरता के मध्य में महानता के प्रतीक दीख पड़ते थे।

बाग़ के उत्तर और दक्षिण में दरवाजे ठीक एक दूसरे के आमने सामने बने थे। एक दरवाजे पर खड़े होकर दूसरा दरवाजा भली प्रकार नजर आता था। उत्तरी दरवाजा बाहर की ओर खुलता था। उसके समीप ही तालाब और देवी का मन्दिर था। अगर किसी रानी को देवी पूजा के लिये जाना होता तो वह इसी रास्ते जाती। यहाँ एक सिपाही का पहरा रहता था

जिसका काम मन्दिर और बाग़ दोनों की रक्षा करना था।

दक्षिणी दरवाज़ा शहर के भीतर खुलता था। उस पर कोई पहरा नहीं था। सिर्फ़ भीतर से कुंडो लगी रहती थी। महल के छोटे दरवाज़े की तरह दीवानखाने की ओर से भी एक छोटा दरवाज़ा बाग़को खुलता था। जो लोग दीवानखाना देखने आते थे वे यह बाग़ भी देख सकते थे पर शर्त यह थी कि उस समय कोई रानी वहाँ उपस्थित न हो।

नैना सरदार से इस बाग़ में खुलने वाले छोटे दरवाज़े की चाभी माँगने आई थी। पहले यह दरवाज़ा सदा खुला रहता था। रानियाँ जब चाहें सैर के लिये जा सकती थीं। लेकिन मनोरंजन की आड़ में और भी कई प्रकार के अरमान निकलने लगे। इस बात की भनक सरदार के कानों में भी जा पड़ी। वह उनके स्वास्थ्य और आराम ही का ज़िम्मेदार नहीं था। स्वास्थ्य से कहीं अधिक उसे उनके सदाचार का ध्यान रखता था। उसने दरवाज़ा बन्द करवा दिया। जिस प्रकार जेल के प्रबन्ध में दारोग़ा की आज्ञा मानी जाती है, कैदियों को इसमें दखल देने का अधिकार प्राप्त नहीं, उसी प्रकार रानियाँ भी सरदार के रवैये पर एतराज़ नहीं कर सकती थीं। उनकी सैर बंन्द हो गई। मन बहलाने का एक ही साधन था वह भी न रहा। अब चाभी विशेष स्थिति में सरदार की आज्ञा ही से मिल सकती थी।

लगभग तीन बजे थे कि जब नैना कमरे में आई और उसने तारो से कहा, "मैं डाक्टर के पास गई थी। उन्होंने तुम्हारे लिये

खुली. हवा में घूमना उपयोगी बताया है। हम शाम को बाग़ में चलेंगे। तैयार रहना। मैं सरदार से पूछ आई हूँ।"

तारो नैना पर क्रुद्ध थी। वह उससे लड़ पड़ने को तैयार बैठी थी। लेकिन अब शिकायत की गुञ्जाइश ही न रही। आँखें कृतज्ञता से झुक गईं।

तारो ने उपरोक्त बाग़ कभी नहीं देखा था। वह उसी बाग़ की बात सोचने लगी जहाँ वह होली खेलने गई थी। जहाँ वह बीमार हुई थी। जहाँ कर्नैल के प्रेम ने जन्म लिया था। जहाँ उसने भविष्य के मधुरस्वप्न देखे थे। उसके मस्तिष्क में फिर एक स्वप्न जाग उठा। बाग़, कर्नैल. प्रेम और वह कुंज जहाँ बैठे वे स्वच्छंन्द पक्षियों का प्रणय देखा करते थे।

वह काफ़ी देर तक इस कल्पना के बीच कर्नैल का सामीप्य अनुभव करती और परिन्दों के खेल देखती रही। फिर वह उठ कर कपड़े बदलने लगी। जब वह सिंगार कर रही थी तो उसके मस्तिष्क में नैना की वह तस्वीर उभर रही थी जब उसने निर्बल शरीर की समस्त शक्ति को एक स्थान पर जमा करके "अच्छा" कहा था।

नैना आप ही आप डाक्टर के पास गई। मौजूदा परेशानी का बीमारी से कोई सम्बन्ध नहीं था। लेकिन वह बात बनाकर सैर का नुसख़ा लिखा लाई और सरदार से जाने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली।

क्या उसने और भी कुछ प्रबन्ध किया था?

आगे की बात जानने के लिए वह व्याकुल अवश्य थी पर उससे कुछ पूछते न बनता था। चार बजते बजते वह बिलकुल तैयार हो गई और नैना से चलने को कहा। लेकिन नैना हँसकर बोली, "अभी तो चार बजे हैं। धूप तेज़ है। ठीक छः बजे जाना होगा।"

तारो लजा गई। वह चिक के क़रीब जा बैठी। व्याकुलता से पिंड छुड़ाने के लिये वह फिर कल्पना की दुनियाँ में खो गई। बाहर धूप तेज़ थी। उसकी आँच भी भीतर आती थी। पर तारो पर उसका कोई प्रभाव नहीं था। वह अपने ही ध्यान में मस्त थी और असीम सुख अनुभव कर रही थी। कर्नैल हसरत भरी निगाहों से चिक की ओर देख रहा था। उसे किसी की तलाश थी वह सख्त दोपहरी में भी महल के नीचे घूम रहा था। क्यों घूम रहा था वह? उसकी निगाहें किसे खोज रही थी?

जब आदमी खुद अपने से इस प्रकार के प्रश्न करता है तो कितना रस होता है उनमें! कर्नैल बाग़ में मिलेगा उससे तो क्या बातचीत होगी? वह बातचीत की भूमिका बाँध रही थी और सोच रही थी कि आरम्भ मैं करूँगी। कहूँगी, तुम क्यों महल के नीचे घूम रहे थे? रानियों को घूरना मज़ाक समझ रखा है। अगर मैं दासी को भेजकर पकड़वा देती तो आ जाता आँखें फाड़ फाड़ कर देखने का मज़ा।"

वह कर्नैल का उत्तर सुनने के लिये उतावली हो गई और नैना से चलने का तकाज़ा किया। लेकिन मालूम हुआ कि अभी

डेढ़ घण्टा बाक़ी है।

नैना इस बार फिर हँस पड़ी थी। लेकिन यह हँसी बुरी नहीं लगी। क्योंकि इस हँसी में व्यंग अथवा तिरस्कार नहीं था। वह अपनी सफलता पर मुस्करा रही थी जो तारो की व्याकुलता में प्रतिबिम्बित थी। पर तारो के लिये समय काटना कठिन हो रहा था। उसे क्या मोलूम कि वक्त चींटी की चाल चलता है। यह जानना तो दरकिनार कि साठ सेकंड का एक मिनट और साठ मिनट का एक घंटा होता है उसने तो घंटे का शब्द ही शहर में आकर सुना था। जब कभी उसका भाई सुबह उठने में देर कर देता तो मा जगाती, "बेटा चाँद उठो। रस्सा भर दिन निकल आया। डंगर ढोर भूखे खड़े हैं।"

बालों में बार बार कंघी फेर कर और आईना देखकर समय गुज़ारना बहुत ही मुश्किल था। जब वह समझती कि अब चलना चाहिये तो अँगड़ाई लेकर अथवा इधर उधर घूमकर चलने की इच्छा प्रकट करती पर ज़बान से कुछ न कहती। नैना वैसे छोटे छोटे कामों में व्यस्त थी मगर वह तारो की हर एक हरकत को ध्यान से देख रही थी। कभी कभी उसकी आत्मा में कोई ऐसा विचार करवट लेता था कि चेहरे की झुर्रियाँ मिटती हुई दीख पड़तीं। शायद उसे तारो की व्याकुलता देखकर अपनी जवानी के दिन याद आ रहे थे।

पौने छः बजे वे कमरे से बाहर निकलीं। तारो का चेहरा नवविकसित पुष्प के सदृश खिला हुआ था और होठों पर मृदु

मुसकान खेल रही थी जैसे उसके हृदय का समस्त उल्लास चेहरे पर नृत्य कर रहा हो, होंठों पर संगीत बन गया हो। लेकिन ड्योढ़ी के क़रीब पहुँचकर सदर दरवाज़े से गुज़रने के बजाय जब नैना बाईं ओर मुड़ी और उसने छोटा दरवाज़ा खोला तो तारा हैरान रह गई। नृत्य और संगीत थम गया और वह भूल भुलैया में खो गई।

बाग़ में दाखिल होने के बाद नैना ने दरवाज़ा बन्द करके भीतर से कुंडी लगादी और वे एक दिशा पर चलने लगीं। लेकिन नैना ने देखा कि तारा का ध्यान बेल बूटों अथवा तितलियों की ओर नहीं जाता। वह निष्प्राण और अचेत सी उसके पीछे पीछे चल रही है। कारण समझना कठिन नहीं था।

नैना उसकी उदासीनता भंग करने के लिये बोली, "तारा देख तो सही कैसे फूल खिले हैं। तू पहले कभी इस बाग़ में नहीं आई। रियासत में यह सबसे सुन्दर बाग़ है।"

"आग लगे इस सुन्दर बाग़ को।" उसकी आँखों से आग बरस रही थी, "उस दिन पंडित को उठा लाईं। आज घूमने आई हैं। मुझे नहीं चाहिये यह घूमना। तुम घूमती रहो।" वह रुक गई। उसकी साँस तेज़ चल रही थी। "मुझसे खिलवाड़ कर रही हो?"

"मैं तुझसे खिलवाड़ करूँगी बेटी?" नैना ने एक मिनट खामोश रहने के बाद कहा और आगे चल पड़ी। तारा भी

चलती रही। उसे विश्वास हो गया कि वाकई कुछ होने वाला है। वह नाहक नैना पर नराज़ हुई।

तारो को एक कुंज में छोड़कर नैना ख़ुद दक्षिणी दरवाजे की ओर जा रही थी। उसने कुछ कहा नहीं था। तारो ने भी कुछ नहीं पूछा था। वह चुप चाप बैठी रही। कुंज लताओं से ढँका था। लताओं पर नारंगी फूल खिले थे। धूप में सूखी हुई परछाइयाँ सूर्य को पश्चिम क ओर दूर गये देख कर फैल गई थीं। हवा में सुगन्धि भरी थी। स्वतन्त्रता के प्रतीक पक्षी इधर उधर फुदक रहे थे। तारो का ध्यान इन सब चीजों की ओर नहीं था। उसकी समस्त इन्द्रियाँ अपने भीतर केन्द्रित थीं। यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह कुछ सोच भी रही है।

"तारो!"

कर्नैल का स्वर पहचान कर तारो चौंकी और एक टक उसकी ओर देखने लगी। उसने इन्द्र बाग़ की तरह पहलू में बैठाने के लिये आपही आप जगह बना दी। कर्नैल के बैठते ही तारो का सिर झुका और कर्नैल के कंधे पर जा टिका। इस सहारे में उसे वही सुख अनुभव हुआ जो कभी जेठ असाढ़ की धूप में खेतों में घूमते हुए नाले के किनारे शीशम की शीतल छाया में बैठकर महसूस होता है। इस सुख का आनन्द आत्मा में भर लेने के बाद तारो ने लम्बी गर्दन ऊपर उठाई और जादू भरे नयनों से अपने माही की ओर देखा।

"इतने दिन बाद आये हो कर्नैल ?" उसने पूछा।

"मैं क्या करता।" कर्नैल मुसकराया, "तुम आपही वहाँ से भाग आईं।"

"तुम मुझे साथ ही न ले गये। अगर मैं चली न आती तो वहाँ पड़ी क्या करती ?" तारो ने जवाब दिया और फिर चोट की—"मर्दों का क्या एतबार।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। औरत चोट करे तो उसमें बहुत आनन्द आता है।

"सुनाओ, बहन का व्याह कैसा हुआ ?"

कर्नैल को इतनी दूर जाना पसन्द नहीं था। वह और तारो इतने दिनों बाद मिले थे। उन्हें अपने ही सम्बन्ध में बहुत सी बातें करनी थीं। "बहन का व्याह तो अच्छा हो गया। अब मुझे अपना व्याह करना है।"

"सच ?" तारो ने विस्मय से तनिक पीछे हटकर पूछा।

"हाँ, रत्नी कहती थी—कर्नैल तुम्हारा व्याह हो जाय तो मुझे बड़ी ख़ुशी हो।"

मतलब स्पष्ट था। आश्चर्य मिट गया।

"फिर तुम करो न व्याह !"

तारो ने फिर कर्नैल के कन्धे पर सिर रख दिया और फिर ख़ामोशी छा गई। दोनों के चेहरों पर नर्म नर्म लहरें उठ रही थीं। दोनों के मस्तिष्क पर भविष्य के चित्र खिंच रहे थे।

कर्नैल ने इस चित्र में रंग भरने के लिये अपनी छुट्टी से

लौटने के बाद से अब तक की सारी कहानी सुनाई। नैना किस तरह उससे मिलती रही। उसने क्या स्कीम बताई और अब मामला कहाँ तक पहुंच गया है।

"अच्छा, नौकरी छोड़ दी!"

"हाँ नौकरी छोड़ दी। अब मैं सिपाही नहीं हूँ। जाने का सब प्रबन्ध हो चुका है।"

तारा चलने के लिये उठ खड़ी हुई।

"इतनी जल्दी न करो तारा।" कर्नैल ने उसका हाथ पकड़ कर बैठाते हुये कहा—"हम चलेंगे कल। सुबह होने से पहले।"

"कल!"

"हाँ कल।" क़र्नैल ने दोहराया।

तारा को यह कल दूर—बहुत दूर मालूम हुई। भविष्य के गर्भ से नित्य प्रति एक कल जन्म लेती थी और बीत जाती थी। बढ़ते बढ़ते इन कलों का सिलसिला बहुत लम्बा हो गया था। हर आने वाली कल में एक आकर्षण था और वह आकर्षण एक के बाद दूसरी में अधिक से अधिक होता गया था। इस प्रकार सबसे परे दूर—दूर—बहुत दूर एक कल थी जो सबसे अधिक आकर्षणशील और सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। तारा किस तरह विश्वास करे कि वह कल एक दम निकट आ गई।

"तड़ड़ड़, तड़ड़ड़" और बहुत सी आवाज़ एक दम बुलन्द

हुई। तारा सहम कर कर्नैल के साथ चिमट गई। कर्नल ने बताया, "बाहर मैदान में रामलीला हो रही है। राम की सेना राक्षसों से लड़ रही है।"

"अच्छा यह रामलीला का शोर है। मैं तो डर गई थी।"

"डरने की कोई बात नहीं तारा," कर्नैल ने नन्हीं मूँछों को बल देते हुए कहा, "कल दसहरा है। राम सीता को रावण की क़ैद से छुड़ायेंगे और मैं—"

"मुहूर्त तो अच्छा है।"

"तड़ड़ड़ तड़ड़ड़," फिर पटाखे चलने लगे। फिर आवाज़ें बुलन्द हुईं। पटाखे चलते रहे, शोर बढ़ता गया। राम की सेना राक्षसों से लड़ रही थी। हर साल लड़ाई होती है। हर साल रावण को मारा जाता है। और हर साल सीता को क़ैद से छुड़ाया जाता है। क्या यह लड़ाई कभी ख़त्म भी होगी? क्या रावण कभी हमेशा के लिये भी मारा जायगा? और सीता हमेशा के लिये निर्भय और स्वतन्त्र हो जायेगी?

[९]

जो आदमी बहुत सा समय जेल में बिता देता है और जो जानता है कि उसे कल रिहा हो जाना है उसकी रात व्याकुल उल्लास की भेंट हो जाती है। आत्मा में मीठी मीठी पीड़ा उठती है। आँख तनिक लगती है तो वह चौंक उठता है। उसे लगता है दारोगा ने ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रखा है और वह बाहर

जाने के लिये कह रहा है। तारा की हालत उस क़ैदी से ज़रा भी भिन्न नहीं थी। अव्वल तो उसे नींद ही न आती थी। और अगर कभी आँख झपक जाती थी तो नैना की आवाज़ सुनाई देती थी—"उठो, उठो तैयारी करो दिन निकल रहा है।" कितनी ही देर करवटें लेते बीत जाती।

दिमाग़ में विचारों के घोड़े दौड़ते। नया घर, नई ज़िन्दगी के मनसूबे नींद को पास तक नहीं फटकने देते। नींद से तो अनींदी ही अच्छी। नींद ज़रा आती है तो सफ़र करना पड़ता है। वह तेज़ तेज़ दौड़ो जा रही है ताकि जल्दी जल्दी मंज़िले पर पहुँच जाय पहुँचने से पहले बहुत से हाथी घोड़े उसका पीछा करने लगते। वह घबरा जाती। तेज़ तेज़—वह और तेज़ चलती। लेकिन वे पीछे से न हटते। टापों की आवाज़ फ़िज़ा में गूँज उठती। और वह हवा में उड़ने लगती। जब भय फिर भी पीछा न छोड़ता तो वह सहायता के लिये चिल्ला उठती—"कर्नैल!"

नैना की आँखों में नींद विलकुल ही नहीं थी। वह अपनी ही बात सोच रही थी। उसे तारा से प्रेम था। पति की मृत्यु के अनन्तर उसने एकमात्र यही एक आत्मिक सम्बन्ध स्थापित किया था। अब यह सम्बन्ध भी टूट जायेगा। तारा चली जायेगी और वह स्वयं क्या करेगी? उम्र का इतना भाग महल में गुज़ारा था। अब उसके बुढ़ापे के दिन कहाँ और किस तरह बीतेंगे?

"टन! टन!" रात की नीरवता में घन्टे गूँज उठते थे।

उनकी आवाज कितनी भयानक थी ? हर आवाज़ के साथ निस्तब्धता फैलती थी और शून्य बढ़ता जा रहा था। ग्यारह के बाद बारह सुने ,फिर एक दो का सिलसला शुरू हो गया। मिनट तेज तेज क़दमों से बढ़ रहे थे। घंटे जल्दी जल्दी बीत रहे थे। उन्हें बारह की मन्जिल पर पहुँच कर नये सिरे से सफ़र शुरू करना था।

चार का घंटा बजते ही दोनों एक साथ उठ बैठीं और चलने की तैयारी करने लगीं। तारा ने ट्रन्कों और सूट केसों से कपड़े और .जेवर निकाल निकाल कर बाहर रख लिये और सोचने लगीं कि इस शुभ अवसर पर कौनसे कपड़े और कौन से गहने पहने। सोच सोच कर उसने रेशम का एक बढ़िया सलवार पहना। फिर सुहाग पट्टी, कांटे, लाकेट. रानी हार और घड़ी-चूड़ी बहुत से गहने पहन लिये और आईने के सामने खड़ी हो कर देखने लगी। जैसे जैसे वह आईना देख रही थी मन में ग्लानि बढ़ रही थी। और वह यों नाक सिकोड़ रही थी जैसे उन वस्त्रों आभूषणों से रानीपन की दुर्गन्ध उठ कर उसके दिमाग़ में घुस रही हो।

आखिर वह झुँझला उठी और गहने उतार उतार कर फेंकने लगी। जैसे वे गहने नहीं उसके शरीर से बिच्छू चिमटे हों। वह सोच रही थी कि ये गहने राजा ने दिये हैं और क़ीमती हैं। शायद इन .जेवरों ही के लिये उसका पीछा किया जाय।

उसने गहने उतार कर फेंकने के बाद रेशमी सलवार भी उतार दिया। जब वह दोबारा आईने के सामने खड़ी हुई तो

उसने वह सलवार पहन रखा था जिसे तीजन के उत्सव पर कर्नैल ने लाकर दिया था और जिसे पहन कर उसने पत्नियों की प्रणय-क्रीणा देखी थी। नाक में दो सफेद मोतियों वाली नथ थी जो उसकी मा ने विवाह के समय उपहार-रूप में दी थी। वह आईने के सामने मुस्करा उठी। उसे यों मालूम हुआ कि वह जन्म जन्म से देहाती लड़की है और अपने माही के संग जीवन विता रही है। वस्त्र, आभूषण, रानी और महल एक सपना था। झूठा सपना।

जब वह चलने के लिये तैयार हो गई तो मैना के पास आई। वह पिंजड़े में बैठी मुटुर मुटुर देख रही थी। जैसे उसे भी रात भर नींद न आई हो। तारो ने पिंजड़े की खिड़की खोल दी। मैना ने पर फड़ फड़ाये और बाहर निकल कर पिंजड़े की छत पर आ बैठी। कमरे से बाहर अँधेरा फैला था। वह उड़ कर कहाँ जाती तारो ने उसे छेड़ा और उड़ने का इशारा किया। वह उसके कंधे पर आ बैठी। उसने मैना को पकड़ लिया। उसकी चोंच को मुँह में डाल कर चूमा और फिर गर्दन पर हाँथ फेरते हुए बोली—

"मैना, तू सुसराल क्यों नहीं जाती? हाँ, शायद इसलिये नाराज है कि तेरा माही तुझे लेने नहीं आया। चल मैं तुझे उसके पास छोड़ दूँगी।"

मैना, नैना और तारो कमरे से बाहर निकलीं। तारो ने दहलीज़ पर खड़े हो कर एक नज़र बिखरे हुये गहनों और कपड़ों पर डाली और फिर यों मुँह मोड़ लिया जैसे कह रही हो, "तुमने

मुझे ख़ून के आँसू रुलाये। अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

वह रात को नौ दस बजे बाग़ से लौटी थीं। नैना ने जान बूझ कर सरदार को चाभी वापस नहीं दी थी। छोटा दरवाज़ा खोला और वे दोनों दबे पाँव दक्षिणी दरवाजे पर पहुँच गईं। बाहर क़दमों की चाप सुनाई दी। दोनों ने सांस रोक ली। "कर्नैल !" नैना ने एक दराज़ से बाहर झांकते हुये धीरे से कहा और उसी तरह धीमे स्वर में उत्तर मिला, "हाँ चली आओ। सब ठीक है।"

दक्षिणी दरवाज़ा आहिस्ता से खुला। दोनों औरतें बाहर निकलीं, एक मर्द बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। वे तीनों चुपचाप शहर की एक अँधेरी गली में से चलने लगीं! "टन! टन!!" पाँच बज रहे थे और वे घंटों की ध्वनि पर पग धरते हुये आगे बढ़ रहे थे!

पूर्वी दरवाजे से लोगों का आना जाना कम होता है। इसी दरवाजे से मैना, नैना, तारा और कर्नैल शहर से बाहर निकले। वे थोड़ी दूर उसी तरह चुपचाप चलते रहे। फिर ठहर गये। नैना उनसे जाने की आज्ञा मांग रही थी।

नैना के सिवाय सब की आँखों में आँसू उमड़ आये। तारा उसके गले लिपट कर इस प्रकार रोई जिस प्रकार लगभग डेढ़ साल पहले मा से अलग होते समय रोई थी। अगर जाने की जल्दी न होती तो ये आंसू बहुत देरतक न थमते। दिल कड़ा करके उसने आँखें पोछीं और कहा, "नैना, तुम मेरी धर्म की मा हो। मैं मा को भूल जाऊँ पर तुम्हें नहीं भूलूँगी। अब तुम

कहाँ जाओगी ?"

"मेरी चिन्ता न करो बेटी। दिन ही कितने रह गये ? किसी के बरतन माँज कर बिता दूँगी। तुम सुखी रहो। जोड़ी बनी रहे। दूधों नहाओ, पूतों फलो।" नैना प्रार्थना कर रही थी, आशीर्वाद दे रही थी।

वह उन के साथ जाने को तैयार नहीं थी। उसके साथ रहने से भेद खुलने की भी आशंका थी। इसलिये उसका अलग जाना ही बेहतर समझा गया। चुनांचे वह नैना जिसने प्राणपण से उसकी सेवा की थी, जो कठिन समय में उसके काम आई थी, वह नैना जो प्रेम और मानवता का अमिट निशान उसके मन पर छोड़ गई थी तारा से अलग हुई।

दिन निकलते निकलते वे शहर से तीन चार मील दूर निकल आये। नव प्रभात का नवल प्रकाश फैल रहा था। खुले विस्तृत खेत, मधुर कंठ पक्षी और ऊँचे ऊँचे वृक्ष उनका स्वागत कर रहे थे। सामने आकाश पर लालिमा फैल रही थी। समस्त वातावरण उल्लासपूर्ण, जीवनपूर्ण था तारा का चेहरा फूलती हुई लालिमा के सदृश खिला हुआ था। उसका हृदय अनादि आलोक से जगमगा उठा था। ऐसा मालूम होता था कि धरती की बेटी अपने को धरती की गोद में पाकर नाचने गाने लगेगी।

"माही आया ! माही आया !!" मैना बोल उठी।

तारा ने बांह घुमाई और उसे फुर से उड़ा दिया। वह एक वृक्ष की फुनगी पर जा बैठी और वहीं से बोलने लगी, "माही

आया ! माही आया !!"

तारा और कर्नैल उसे देख कर मुस्कराये और मुस्कराये हुये चलने लगे। उनके दिलों में जाने कैसी गुदगुदी उठ रही थी। आल्हाद और प्रसन्नता के कारण शरीर की सारी बोटियाँ नाच रही थीं। लगता था, पुरुष और नारी का यह जोड़ा सहयोग और साहचर्य का सम्बल ले जीवन की अनन्त पगडण्डी पर चला जा रहा है, चला जा रहा है।

पुरुष अब आतंक, बर्बरता, नृशंसता के प्रतीक राजमहल, का ड्योढ़ीदार, लक्ष्मी का क्रीतदास न था, वह फिर किसान का बेटा, पूर्ण मानव हो गया था। नारी भी अब किसी राजा की कामुकता, विलासिता और भोग की साधन मात्र न थी। अब वह महलों की स्वर्ण शृँखलाओं से मुक्ति पा चुकी थी। अब वह भी नारी होगई थी, पुरुष की सारी महत्वाकांक्षाओं की प्रतीक, जीवन के सारे अरमानों का साकार रूप—वह फिर धरती की बेटी थी, धरती के गोद में वापस जा रही थी।

मौत के साये, राजमहलों का पीछे छूटा हुआ दृष्य क्षितिज की ओट में, धुँधला पड़ता जा रहा था; और निस्सीम आकाश के नीचे खेतों और बाग़ों के बीच नवजीवन का स्वर्ण-रश्मि-मंडित शस्य श्यामल दृश्य फैलता बढ़ता जा रहा था।